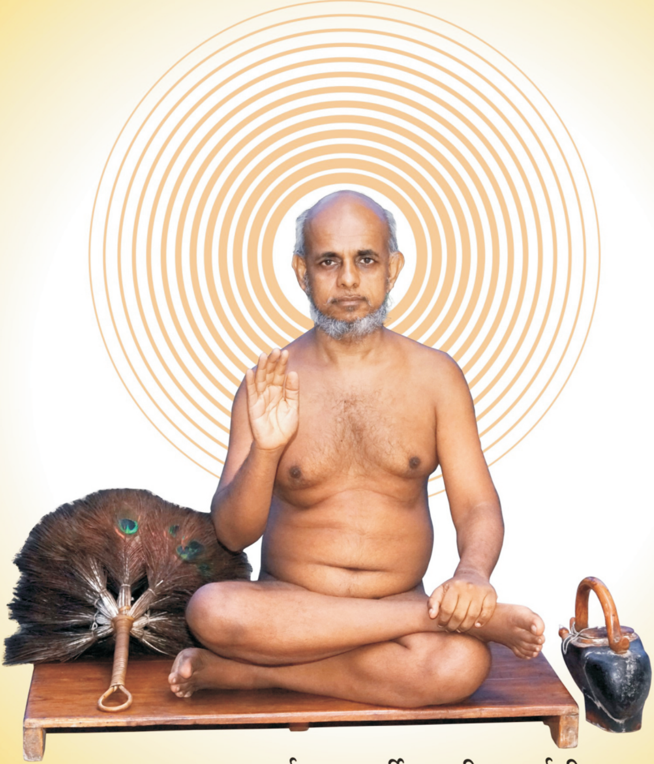

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

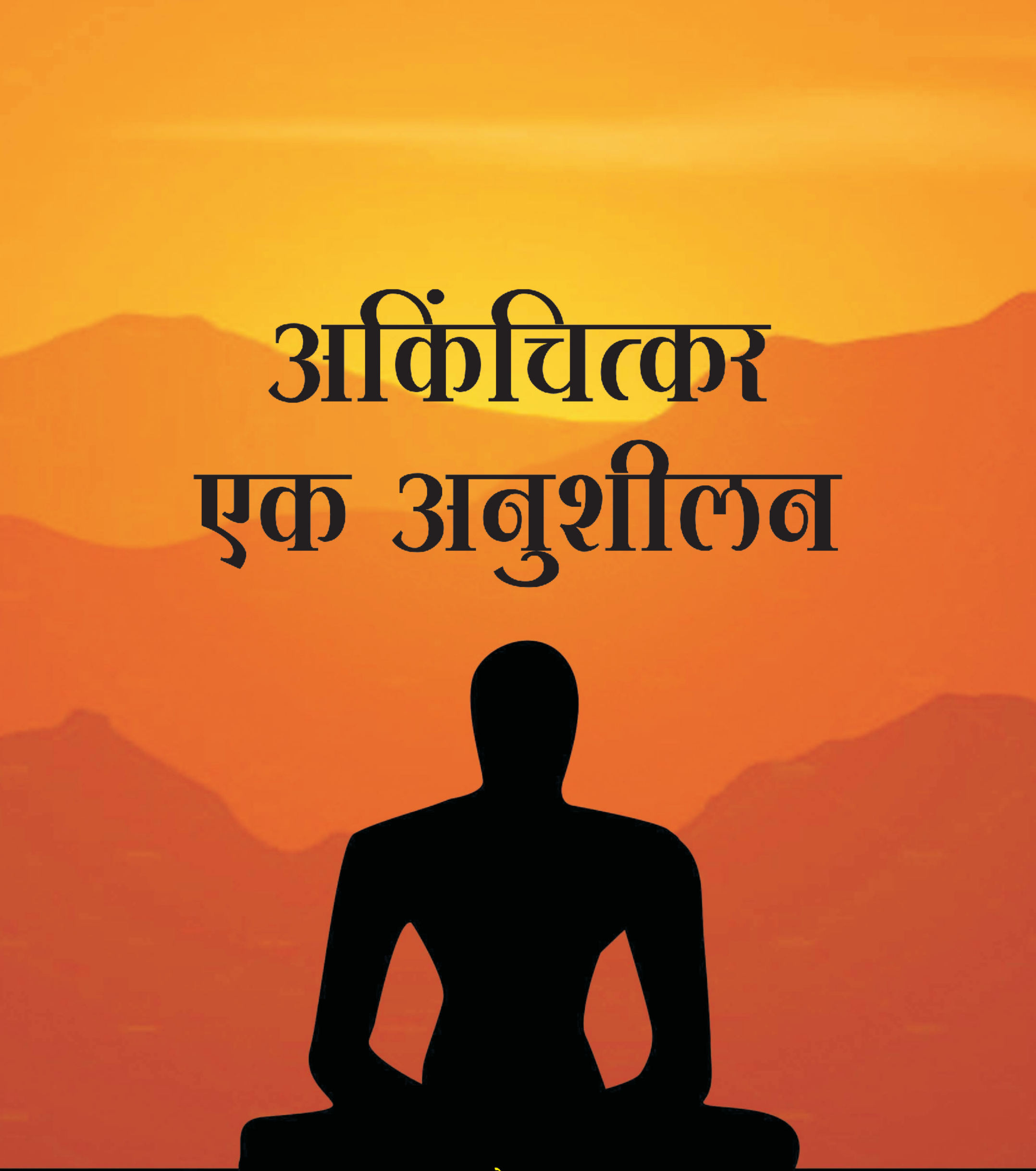

अकिंचित्कर एक अनुशीलन

लेखक

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

भदैनी, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

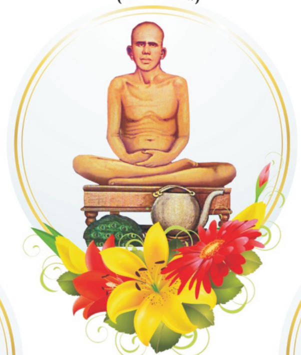

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

अकिंचित्कर : एक अनुशीलन

लेखक
पं. फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री

सम्पादक
पं. शीलचन्द शास्त्री, मवाना
डॉ. अशोक कुमार जैन, रुड़की
प. केशवदेव जैन, कानपुर

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन मन्दिर,
भदैनी, वाराणसी

प्रकाशकीय

जैन समाज की वर्तमान स्थिति मे जैनधर्म के कतिपय सिद्धान्तों को काफी विवादास्पद बनाया जा रहा है। जिसमे अन्य विषयों के साथ ससार बन्धन में "मिथ्यात्व" की क्या भूमिका है ? यह सर्वाधिक चर्चित है। विगत आठ वर्षों से तो इस प्रकरण की काफी चर्चा चल रही है।

प्रस्तुत विषय की इस गम्भीरता को देखते हुए निरन्तर यह आवश्यकता महसूस की जा रही थी कि इस विषय पर एक आगम परक शोधात्मक प्रामाणिक कार्य प्रकाश मे आना चाहिए, ताकि जैनधर्म के प्रदर्शित सिद्धान्त सुदृढ रह सके। इस विषय पर प. फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री ने पुस्तक लिखी है, वह बहुत ही प्रासगिक व युगानुकूल है। हमे अपने सस्थान से यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। हम सस्था की तरफ से उनके कृतज्ञ है। साथ ही इस पुस्तक के प्रकाशन मे जिन लोगो ने प्रत्यक्ष परोक्ष सहयोग दिया है उनके भी हम बहुत आभारी हैं। इस पुस्तक के माध्यम से लोग अपना मार्ग प्रशस्त करेगे इस भावना के साथ।

निवेदक

डॉ अशोक जैन

अध्यक्ष, अशोक प्रकाशन मन्दिर, मदैनी,
वाराणसी

"इतिवृत्त
कुछ इस तरह से"

वर्तमान मे कुछ एक अध्येताओं द्वारा ज्ञान के मौलिक चिन्तनात्मक अनुशीलन की धुन सी सवार हो गयी है, शायद । इसी कारण, न जाने क्या सोचा गया, और फिर, जैनागम की पूर्वापर एक प्रतिष्ठित आचार्य परम्परा के मूलमूत हार्द पर तीखा असह्य कुठाराघात हो ही गया। इस रूप मे कि –" ससार बन्धन मे मिथ्यात्व अकिंचित्कर है । पहले जिनवाणी माँ ने कराह भरी" प्रवचन पारिजात के रूप मे और दूसरी बार सिसकी "अकिंचित्कर के रुप मे——। विद्वतगण ने सिसकी सुनी और अनेकों लेखादि के रूप मे विगत 6-7 वर्षों से मलहम-पट्टी चलती रही–। तब कहीं विकल्पों की कली "फूल बनी, जिसने जिनवाणी माँ का स्थायी उपचार किया, जो आपके समक्ष प्रस्तुत है । एक जिज्ञासापूर्ण पूर्वाग्रहमुक्त तुलनात्मक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए लिखी गयी यह पुस्तक आपके सद्विचारो का पथ प्रशस्त करने में पूर्णतः सक्षम होगी । ऐसा मैं इस पुस्तक को पढकर अनुमव कर रहा हूँ। पुस्तक रूप इस मजिल पर आने तक का मार्ग अपना एक रोचक मार्मिक इतिहास समेटे हुए है । जिसकी प्रस्तुति का मोह सवरण शायद ही कर सकू ।

बात उस समय की है जब धवला ग्रन्थाधिराज की प्रथम वाचना शिविर "सागर" मे थी । वाचना के दौरान वयोवृद्ध/ज्ञानवृद्ध सर्वमान्य विद्वान श्री फूलचन्द जी सिद्धान्त-शास्त्री के समक्ष, इसी सदी के एक आचार्य द्वारा दृढता से कही गयी यह चर्चा प्रकाश मे आयी कि "मिथ्यात्व, आस्रव व बन्ध के क्षेत्र मे अकिंचित्कर है । जिस पर प श्री फूलचन्द जी ने पूर्वापर विचारते हुए समुचित समाधान दिया था । परन्तु आचार्य श्री की मान्यता अडिग रही, और परस्पर मे थोड़ा तनाव भी हुआ । परिस्थिति को देखते हुए पडित जी सा तो वाचना को छोडकर सागर से बनारस चले गये । कालान्तर मे पुनः अगले वर्ष जबलपुर मे वाचना हुयी । वॉचना के मध्य ही वातावरण सागर जैसा हो गया । बारम्बार आचार्य श्री यही कहते कि मिथ्यात्व को बन्ध का कारण मानने पर आठ जगह बाधा आती है । एक बार तो मान्यवर प श्री जवाहरलाल जी भिण्डरवाले प्रत्युत्तर मे आचार्य श्री से यह निवेदन भी किया कि, आठ जगह जो बाधा आती है, वह तो ठीक ही है, परन्तु नौवीं जगह आप बाधा उपस्थित नही करियेगा । आठ जगह जो विशेष बात है, उसका समाधान आचार्यों ने दिया ही है । श्रद्धेय पडित श्री फूलचन्द जी सा ने तो दो बार मरी सभा मे यहाँ तक कहा कि "आप लोगों को यदि गृहस्थ विद्वानो की मानना हो तो मानों, और इन महाराजों की मानना हो तो उनकी मानो, मुझे चाहे कितना ही भी प्रताडित करो, फिर भी मेरे मुख से तो किसी मी तरह आगम विरुद्ध नहीं बुलवा सकते हो, पुनः कहा कि जो सत्तर कोड़ा-कोड़ी

का बन्ध करे, वह तो बन्ध के लिए अकिंचित्कर है, और जो चालीस कोडा-कोडी का बन्ध करे, वह बन्ध के लिए सब कुछ हो, यह आगम हीन तथ्य भला कैसे मान्य हो सकता है ?"

तदुपरान्त अगली तीसरी बार की वाँचना पुनः सागर में हुयी, जिसमे आचार्य श्री के निर्देश पर पडित जी सा निमन्त्रित नहीं हुए। परिणामस्वरूप वाँचना सिर्फ बाची ही गयी, अर्थ नही खोला गया था। कारण स्पष्ट था, उसके मर्मवेत्ता वहा उपस्थित नहीं थे। इस तरह से तीन वर्ष व्यतीत हो गये, और प्रवचन-पारिजात के लेखक की ये आगम विरूद्ध बाते जनसामान्य मे विवादास्पद हुयीं। देश के लगभग सभी विद्वानों ने इस पर अपने विचार और शोधात्मक लेख प्रस्तुत किये। इस विषय पर सर्वप्रथम लेख बाल ब्र प. श्री कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, ललितपुर वालों ने लिखा था। जो जैन सन्देश अक ३० जून, सन् ८२ पृष्ठ ५ पर प्रकाशित हुआ था। इस लेख मे प श्री फूलचन्द जी, प श्री कैलाशचन्द्र जी बनारस, प श्री जगनमोहन लाल जी कटनी, प श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर, आदि जैसे दिग्गज विद्वानो से इस विषय पर अपने विचार देने के लिये, अत्यन्त आग्रहपूर्ण निवेदन किया था। प्रतिक्रिया रूप मे प श्री कैलाशचन्द्र जी बनारस ने इसी लेख की "सम्पादकीय नोट" मे लिखा था कि "गुरुजनों से (प्रवचन पारिजात के लेखक) प्रार्थना है कि वे अपनी भूल स्वीकार करके आगमश्रद्धा का परिचय देवे। फिर तो इसके बाद इस विषय पर लेखों का सिलसिला ही चल पडा। अधिकाश जैन पत्रों मे अकिचित्कर मान्यता के विपक्ष मे लिखा जाने लगा। प श्री कैलाशचन्द्र जी बनारस वाले ने जैन सन्देश २३ दिसम्बर सन् ८२ के अ क मे "मिथ्यात्व ही अनन्त ससार का बन्धक" के सम्पादकीय लेख में यह लिखा कि "समस्त प्राचीन जैनाचार्यों के विचार मे यह तर्क नहीं आया जो आज प्रथम बार एकमात्र आचार्यविद्यासागर के विचार मे आया है। क्या वे सब आगम रचयिता आचार्य आगम की गहराई मे नही उतरे ?"

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार मे जैन साधु को "आगम चक्खू साहू" अर्थात् आगम रूप चक्षु वाले कहा है, जब एक जैनाचार्य के लिये अनिवार्य आवश्यक आगमिक ज्ञान ही विवादास्पद हो गया तो उनकी तरफ से जैन सन्देश १८ नवम्बर ८२ के अ क प्रथम पृष्ठ पर ही "मिथ्यात्व की बन्ध विषयक भूमिका पर एक आवश्यक स्पष्टीकरण प श्री जगनमोहन लाल शास्त्री जी की लेखनी मे दिया। तथा विद्वानों से यह आग्रह भी किया गया कि अब इस चर्चा को यहीं समाप्त करे।"

पडित श्री जगनमोहनलाल जी शास्त्री के उक्त स्पष्टीकरण के उपरान्त जब विद्वानों ने व्यक्तिगत चर्चा/वार्ता आचार्य श्री से की, तो उनका मन्तव्य पूर्ववत् ही पाया उनमे कोई सशोधन नहीं था। तदुपरान्त जब चौथी वाँचना जबलपुर मे हुयी तो, पुरानी चर्चा मे फिर चेतना आयी। तब पुनः आमन्त्रित विद्वान श्री फूलचन्द जी साहब बनारस

वालो ने उपस्थित लोगो से निवेदन किया कि यदि शान्त भाव से आचार्य श्री समझना चाहते है, तो मै उत्तर दूगा, अन्यथा नही। अनेक विद्वानो के अत्यन्त आग्रह पर प श्री फूलचन्द जी ने कहा कि आचार्य श्री व मेरे अलावा अन्य कोई भी नहीं बोलेगा। यह सभी के द्वारा मान्य होने पर भी ब्र राकेश जी व उनके कुछ सहयोगियो द्वारा इन नियमो की गौरव-गरिमा नही रखी जा सकी। तदुपरान्त थोडे से व्यवधान के पश्चात् पुनः चर्चा आगे बढाते हुए श्रद्धेय श्री फूलचन्द जी साहब ने श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य से कहा कि मै भूल जाता हूँ। अतः आचार्य श्री के जो प्रश्न है, वे आप लिख ले। अतः प श्री पन्नालाल जी ने वे प्रश्न लिखे और प श्री जगनमोहन लाल जी, कैलाश चन्द्र जी बनारस, श्री मुन्नालाल जी आदि ने बैठकर उनके प्रश्न आगमो मे से निकाले। प श्री फूलचन्द जी बोलते गये और प श्री पन्नालाल जी लिखते गये। दो दिनो बाद वे उत्तर लिखित रूप मे उस समय के ब्र दिनेश कुमार जी सहारनपुर वालो के हाथो आचार्य श्री के निवास स्थान पर प्रस्तुत किये गये। आचार्य श्री ने उन उत्तरो को पढकर अत्यन्त आवेश मे उन जैनागमो के पृष्ठो को फेकते हुए कहा कि ये भी क्या कोई उत्तर है ?

इस अकाल्पनिक प्रसग को देखकर ब्र श्री दिनेशकुमार जी बहुत क्षुब्ध हुए और इस व्यवहार को विद्वानो के समक्ष कह दिया। दूसरे दिन मान्यवर श्री जवाहरलाल जी भिण्डरवाले पधारे, तो सघस्थ मुनिराजो ने उनसे वही प्रश्न पूछे तो प श्री ने उत्तर दिया कि अभी तक सभी आचार्य एव सभी विद्वान मिथ्यात्व को बन्ध का कारण एक मत से स्वीकृत करते आये है तथा जो आगम की बात को नही मानता वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। इस बात के सुनने पर आचार्य श्री ने प श्री जवाहरलाल जी द्वारा की जाने वाली वाचना से असहमति व्यक्त की। तब प श्री पन्नालाल जी ने वाचना प्रारम्भ की, तो फिर आचार्य श्री ने पधारना प्रारम्भ किया।

धवला ग्रन्थाधिराज की जबलपुर मे आयोजित वाचना के दौरान ही यहा के एक सभ्रान्त व्यक्ति व एक ब्रह्मचारिणी बेन जब प श्री जगनमोहनलाल जी से उनके कमरे मे चर्चा करने गयी। चर्चा के दौरान वे बहुत क्षुब्ध होकर बोले कि मैने महाराज को बहुत समझाया और कहा भी कि, ये मत छापो, समाज मे विरोध होगा। परन्तु आचार्य श्री बोले कि मेरा १० वर्ष का चिन्तन है, मै भी आचार्य हू, मै तो लिखना चाहूगा। तब पडित जी बोले कि अब वो विद्यासागर नही रहे जो पहले थे, अब तो हठीले हो गये है मै क्या करू ?

आचार्य श्री के इस विषय पर दिये गये प्रवचनो को "प्रवचनपारिजात व अकिंचित्कर" पुस्तक द्वय के रूप मे प्रकाशित किया गया। इन दोनो पुस्तको का गम्भीर स्वाध्यायी, प्रबुद्ध वर्ग द्वारा तीव्र विरोध किया गया। लेखको मे आचार्य श्रुतसागर जी महाराज के प्रमुख शिष्य वीरसागर महाराज, प श्री नरेन्द्र कुमार जी शास्त्री सोलापुर स्व प श्री कैलाश चन्द्र जी बनारस प श्री गम्भीरचन्द्र जी वैद्य अलीगज,

प श्री मुन्नालाल जी प्रभाकर, पं. श्री रतनलाल जी कटारिया, केकडी, प श्री पदमचन्द्र जी शास्त्री, सम्पादक अनेकान्त, दिल्ली, प्रकाशचन्द्र जी हितैषी, सम्पादक सन्मति सन्देश दिल्ली, डॉ सुदर्शन लाल जी, प श्री बाबूलाल जी जैन कलकत्ता वाले दिल्ली, प श्री नेमचन्द जी जैन वकील सहारनपुर, प. श्री प्यारेलाल बडजात्या अजमेर, प श्री सुजानमल जी गदिया अजमेर, प श्री बारेलाल जी, प श्री भुवनेन्द्र कुमार जी "बादरी" वाले सागर आदि ने जैन सन्देश, सन्मति सन्देश, अनेकान्त आदि मे विरोध रूप मे आगमिक आधार से लेख लिखे थे। दूसरी तरफ जैन गजट, जैन सन्देश मे कुछ लेख डॉ श्री रतनचन्द्र जी भोपाल के भी आचार्य श्री की मान्यता के समर्थन मे प्रकाशित हुए थे। तथा जैन गजट मे प सुमेरचन्द्र दिवाकर का भी आचार्य श्री की मान्यता के विरूद्ध जैन गजट के दिस . ८६ मे लेख प्रकाशित हुआ था। इसके साथ ही स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित पुस्तकाकार रूप मे "डॉ योगेश चन्द्र जैन द्वारा भी" जैन दर्शन मे बन्ध-मोक्ष लघुशोध प्रबन्ध मे भी पर्याप्त सन्तोषप्रद लिखा गया है, जो कि पठनीय है। "अकिंचित्कर" के प्रकाशन के पश्चात् अत्यन्त विशद रूप से सभी प्रश्नो का समाधान होना भी अत्यावश्यक था। अतः श्रद्धेय फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री से इस विषय पर लिखने का आग्रह किया गया। क्योंकि वे ही इस विषय के एक मात्र अधिकारी विद्वान है। उनसे यह कार्य कराने के लिये पन्द्रह दिन हस्तिनापुर रुका भी परन्तु कार्य तीव्र गति से नही हो पाया। जब कालान्तर मे कई प्रतिष्ठित विद्वानो व स्वाध्याय प्रेमियो द्वारा अत्यधिक आग्रह पूर्वक शीघ्र पुस्तक लिखने को निवेदन किया, तब कही यह पुस्तक मूर्त रूप ले सकी है।

जैन तत्वमीमासा की प्रस्तावना मे, तथा अन्य स्थलो पर भी आदरणीय व्रती विद्वान श्री जगनमोहनलाल जी शास्त्री ने लिखा है कि, पडितो का यह कर्तव्य है कि अपनी पूजा, प्रतिष्ठा आजीविका आदि की चिन्ता न करते हुए सत् का उद्घाटन करे। अतः पडित जी ने भी वस्तुतः अपने इस कर्तव्य को साकार ही किया है। पुस्तक को लिखकर जो उन्होने सम्पूर्ण जैन समाज पर उपकार किया है, उसका यह समाज चिर ऋणी रहेगा।

अकिंचित्कर के प्रारम्भ मे "पुरानी चर्चा पर नये सन्दर्भ" पर जो यह लिखा गया है कि "क्या सम्यग्दर्शन जो कि मोक्ष का कारण है किसी प्रकृति के आस्रव या बन्ध का भी कारण हो सकता है ? पहला यदि हा होता है तो वह मोक्ष का हेतु नही हो सकता है? कारण जो बन्ध का हेतु वह वह उससे विपरीत कार्य मोक्ष का हेतु नही हो सकता अन्यथा शीतल एव उष्ण परस्पर विरूद्ध धर्मों के अवस्थान का आधार एक धर्मी होना चाहिये ? लेकिन ऐसा सम्भव नही है। दूसरा यदि कहो कि सम्यग्दर्शन तो मोक्ष का ही हेतु है, बन्ध का नही, तो उससे विलक्षण जो मिथ्यात्व वह भी मात्र ससार का हेतु (विपरीताभिनिवेश जनक) है बन्ध का नही। कारण बन्ध रूप कार्य उससे भिन्न है।

उत्तर —कारण, कारण है कार्य नहीं और कार्य, कार्य है कारण नहीं।

इस प्रकार की भिन्नता तो हमे इष्ट ही है, लेकिन बन्ध रूप कार्य कभी कारण के बिना नहीं होता है। "कारणेण बिना कज्जुप्पत्ति विरोहादो" (घ ७, पृ ७०) कारणानुविधाईकार्याणि कारण का अनुसरण करके कार्य होता है। जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य होता है। मिथ्यात्व (विपरीताभिनिवेश) मात्र ससार का हेतु है, तो ससार किसका नाम है ? तथा कारण बिना का ससार है क्या ? उस ससार का क्या स्वरूप है ? क्या वह चर्तुगति कारण रूप बन्ध से ससार पृथक है ? इन सारे प्रश्नो के उत्तर बहुत स्पष्टता से प्रस्तुत पुस्तक मे दिये गये हैं। वस्तुतः बन्ध मे मिथ्यात्व "अकिंचित्कर हैं" इन शब्दों का प्रयोग ही आगम मे कहीं नहीं किया गया है। यह तो २१वीं सदी की ओर अग्रसर आचार्यों की कपोल-कल्पना मात्र है। यह भले ही लिखा गया हो कि, आचार्य श्री को अन्य स्वतन्त्र मान्यता की स्थापना नहीं करनी है लेकिन अकिचित्कर पुस्तक का कथन तो जैन सिद्धान्त व मान्य सभी आचार्यों/विद्वानों से विरुद्ध व अतर्कसगत होने पर स्वयमेव अलग से स्वतन्त्र मान्यता स्थापित होती हुयी गृहीत मिथ्यात्व का आधार-स्तम्भ बन गयी है। जिसका बहुत सरलता से खण्डन प्रस्तुत पुस्तक मे हुआ है। अतः समस्त साधर्मी जन विषय की स्पष्टता का लाभ लेकर आगमानुसार अपना कल्याण करेगे, तभी इस पुस्तक की सार्थकता होगी। प्रस्तुत पुस्तक मे पण्डित श्री फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री ने इस वृद्धावस्था मे भी कठोर परिश्रम करके जो जिनवाणी की महती सेवा की है उसके लिए प्रबुद्ध वर्ग चिरऋणी व कृतज्ञ रहेगा। आद पण्डित जी साहब स्वास्थ्य लाभ लेते हुए दीर्घजीवी हों। तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष की विद्वत समाज की तरफ से हम सब आपके समक्ष नतमस्तक होते हुए इस महत्वपूर्ण पुस्तक हेतु अभिनन्दन करते है।

विनीत
पं. शीलचन्द्र शास्त्री
मवाना (हस्तिनापुर)

प्रस्तावना

यह तो हम जानते हैं कि गुण स्वयं पर्याय रूप नहीं होता, तथा जो द्रव्य है वह भी स्वय पर्याय रूप नहीं होता। परन्तु द्रव्य और गुण के बिना पर्याय नहीं होती यह भी सत्य है। द्रव्य की पर्याय को व्यजन पर्याय कहते हैं। और गुण की पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। ऐसे ही जिस द्रव्य में जो शक्ति होती है, उसके अनुसार ही उसकी पर्याय होती है उसमे प्रत्येक समय होने वाली पर्याय रूप शक्ति न हो और पर्याय हो जाये ऐसा नहीं है उस-उस समय की शक्ति भिन्न-भिन्न है उसके अनुसार पर्याय होती है। आप्त मीमांसा मे कहा भी है –

शुद्धयशुद्धी पुनः शक्तिः पाक्यापाक्य शक्तिवत्।
सघनादिः लसो र्व्यक्तिः स्वभावोऽ तर्क गोचरः ॥

प्रत्येक द्रव्य मे और खास करके जीव द्रव्य में शुद्धि और अशुद्धि नाम की दो शक्तिया होती है, जिनकी व्यक्ति एक शक्ति की सादि रूप से होती है और एक शक्ति की व्यक्ति अनादि रूप से होती है।

जीव पुद्गल रूप से क्यों नहीं परिणमता, यदि यह पूछा जाये तो कहना होगा कि उसमे पुदगल रूप से परिणमने की शक्ति ही नहीं है। उसी प्रकार सब द्रव्यों की शक्ति और व्यक्ति जाननी चाहिए।

उसी प्रकार जीव मे भी सुख शक्ति है उसके सद्भाव मे सुख की व्यक्ति होती है। किन्तु पर के सयोग से शक्ति विभाव रूप से परिणमती है और जैसे-२ पर का सयोग दूर होता जाता है वह क्रम से स्वभाव रूप से होना प्रारम्भ हो जाती। सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन ये दो पर्यायों मे श्रद्धा गुण कारण है। स्वभाव रूप पर्याय सम्यग्दर्शन है और विभाव रूप पर्याय मिथ्यादर्शन है। सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धा गुण की है। यह स्वभाव पर्याय है क्योंकि मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी के अभाव मे वह चौथे गुणस्थान में प्रकट हो जाती है।

स्वानुभूति कहो या आत्मानुभूति कहो वह चौथे गुणस्थान मे ही उत्पन्न हो जाती है। सराग सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन का लक्षण नहीं है। यह सम्यग्दर्शन का ज्ञापक निमित्त है। जिस जीव के सम्यग्दर्शन होता है। उसके व्यवहार में फर्क पड़ जाता है। वह स्वय स्वभाव से मोक्षमार्ग के अनुरूप प्रवृत्ति करने लगता है। वह ऐसे वचन नहीं बोलता है जो पर को कष्टदायक लगे। ऐसी चेष्टा करता है जो स्वभाव से मोक्षमार्ग के अनुकूल होती है।

इन दोनों के लक्षण भिन्न है। सम्यग्दर्शन का लक्षण है मिथ्यात्व आदि पाँच या सात के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से होने वाला वस्तु की स्वभाव रूप पर्याय। तथा सराग सम्यग्दर्शन का लक्षण है प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव का एक साथ होना। सम्यग्दर्शन रूप स्वभाव पर्याय होती है तो उसके प्रशमादिभाव हीनाधिक रूप से प्रकट हो जाते हैं।

यद्यपि मिथ्यादृष्टि के भी ये प्रशमादि भाव पाये जाते हैं यह सच है पर सम्यक् दृष्टि के ये भाव अवश्य ही होते हैं। इसमें इतना फर्क है।

इसके बाद विविध अनुयोगों के द्वारा मिथ्यात्व की चर्चा करके अकिंचित्कर पुस्तक मे जो कथन किया गया है उसको सम्बन्ध बनाकर जैन धर्म की मान्यता के अनुसार अनेकान्त की दृष्टि मे रखकर इसमे (इस पुस्तक में) कथन किया गया है।

जैसे अकिंचित्कर पुस्तक मे स्थूल ऋजुसूत्रनय के अनुसार कर्मबंध के कारण कषाय और योग कहे गये है। उसी प्रकार द्रव्यार्थिक नय की मुख्यता से नैगम, सग्रह और व्यवहार नय से मिथ्यात्व आदि पाँचों को बन्ध का कारण कहा है। यहाँ द्रव्यार्थिक तीनो नयो मे वर्तमान पर्याय गर्भित है, क्योकि द्रव्यर्थिक नयो मे अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायो का भी समग्र भाव से ग्रहण हो जाता है, इसीलिए नैगम नय के द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो भेद किये गए है।

अकिंचित्कर पु मे मिथ्यात्व भाव परिणामात्मक होने से मात्र भाव रूप है उसमे क्रियात्मकता न होने से वह आस्त्रव और बन्ध का निमित्त नहीं होता यह कहा गया है। यदि ऐसा है तो मिथ्यात्व को बन्ध कारणो मे नहीं गिनाया जाना था। सब आचार्य तो उसे बन्ध का कारण माने और अकिंचित्कर पुस्तक कहे कि वह आस्त्रव और बध नही करता। क्या उसका यह कथन सिद्धान्त विरूद्ध नही है ? कषाय और योग को क्रिया करने वाला अकि पु मे कहा जाय और मिथ्यात्व को क्रिया मे निमित्त न कहा जाय, यह बडी विचित्र बात है। जबकि मिथ्यात्व मे गुणस्थान मिथ्यात्व भी क्रिया का निमित्त है, अन्यथा कषाय भी क्रिया का निमित्त न होने से वह आस्त्रव और बन्ध का कारण कैसे बनेगी ? अर्थात् नही बन सकेगी। क्रिया का निमित्त तो योग है। देखो ग्यारहवे गुणस्थान से लेकर तेरहवे गुणस्थान तक कषाय के अभाव मे भी क्रिया होती है, इसीलिये मिथ्यात्व के समान कषाय भी क्रिया का निमित्त नही बन सकेगी। अतः अकि पु के अनुसार कषाय भी भावात्मक होने से वह भी आस्त्रव और बन्ध का कारण नही बन सकेगी, इसलिये यह मान लेना चाहिये कि जिस गुणस्थान मे जो निमित्त होते है वे सब मिलकर आस्त्रव और बन्ध के कारण है। इसीलिये इनमे परस्पर की निमित्तता बन कर वे सब मिलकर आस्त्रव और बन्ध के कारण है और प्रत्येक भी आस्त्रव और बन्ध के कारण है यह सिद्ध होता है।

दूसरी बात इस पुस्तक मे यह स्पष्ट की गई है कि नैगम, सग्रह और व्यवहार नय से मिथ्यात्व आदि पाँचो भाव बन्ध के कारण है और अशुद्ध ऋजुसूत्रनय से योग और कषाय ये दोनो बन्ध के कारण है जो कर्मबन्ध होता है उसमे पाँचो ही द्रव्यार्थिक नय से कारण बन जाते है और पर्यायार्थिक नय से कषाय और योग से दो ही कर्म बन्ध के कारण ठहरते है। ऐसा वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार का मतव्य है। तथा शब्दादि तीन नयो से यह नहीं कहा जा सकता कि कर्मबध कैसे हुआ, इसलिये इन नयो से अवक्तव्य कहा जाता है।

अकिंचित्कर पुस्तक मे अन्य जो अवान्तर विषय आये हैं उन पर अपनी दृष्टि से शीर्षक देकर विचार किया गया है। एक बात अवश्य है कि सब स्थानो पर जो बन्ध के दो भेद किये गये है उनमे से तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ८ का प्रथम और दूसरा सूत्र है उसमे से प्रथम सूत्र द्रव्य-भाव दोनो प्रकार से प्रत्ययो का कथन करने वाला सूत्र है, ऐसा दोनो टीकाओं मे स्वीकार किया गया है। यहाँ मुख्य रूप से तात्पर्यवृत्ति टीका

का मुख्य भाग उद्घृत कर रहे है "मिच्छत्त अविरमण कसाय ज़ोगा य सण्ण-सण्णा दु । सण्णसण्णा इत्यत्र प्राकृत लक्षणबलात् आकारलोपो द्रष्टव्यः । मिथ्यात्वविरतप्रमाद कषाययोगः कथभूताः, भाव प्रत्यय द्रव्यप्रत्यय रूपेण सज्ञाऽसज्ञाश्चेतना चेतनाः तेसिपि होदि जीवो रागदोसादिभावकरो-तेषा च द्रव्यप्रत्ययानां जीवः कारणा भवति । कथभूतः? एते बहुविह भेदा जीवे । उत्तर-प्रत्ययभेदेन बहुधा विविधाः, क्व ? जीवे अधिकरणभूते। पुनरपि कथभूताः । तस्सेव अणण्णपरिणामाः, अभिन्नपरिणामाः, तस्यैव जीवस्याशुद्ध निश्चय-नयेनेति गा १७२-१७३ की जयसेनाचार्य कृत टीका (पृ १४७)।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरूप बध के कारण हैं वे भाव और द्रव्य के भेद से दो प्रकार के होते हैं । उनमे से भाव प्रत्यय चेतन स्वरूप व द्रव्य प्रत्यय जड़ स्वरूप है, और इन द्रव्य प्रत्ययों का भी कारण राग, द्वेष आदि भावों का करने वाला ससारी जीव होता है । ये कैसी हैं ? आधारभूत जीव में वे सज्ञाये उत्तर भेद से अनेक प्रकार की होती है । जो कि अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से उस जीव के परिणाम स्वरूप उससे अभिन्न होते हैं ।

अकिचित्कर पुस्तक मे एक स्थान पर लिखा है —"मिथ्यात्व अधिकरण है । जैसे द्रव्य गुण और पर्यायो का आधार होता है । इसी प्रसग को ध्यान मे रखकर मिथ्यात्व को अकिचित्कर कहा गया है । उसी प्रसग मे मिथ्यात्व मात्र अधिकरण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है । यानि मिथ्यात्व के उदय मे करण अर्थात् अनतानुबधी अपनी शक्ति के द्वारा कर्त्ता बन कर इस बन्ध रूप कार्य को करने वाली होती है ।"

(१) इस पर विचार करने से अनेक आपत्तिया खड़ी होती है । अनतानुबधी विसयोजित के सीधे मिथ्यात्व गुणस्थान मे आने पर एक आवलि काल तक अनतानुबधी का बन्ध तो होता है पर उदय नहीं । वहा अनंतानुबधी ही स्वय के आस्त्रव और बन्ध का कारण है क्या ?

(२) दूसरे मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन १६ प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यात्व के कारण कहा है वह बन्ध अकेला अनतानुबधी के कारण बन जायेगा क्या ? यदि हा तो इसमें सिद्धान्त विरोध क्यो नही आता ? क्योंकि आगम तो कहता है कि मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यात्व के कारण होता है । तब अनन्तानुबंधी कर्त्ता और करण कारक कैसे बनेगा ?

(३) जैसे यथासम्भव सब प्रकृतियों के बन्ध के लिए अनन्तानुबधी करण और कर्ता बन जाती है । वैसे ही १६ प्रकृतियों के बन्ध के लिए मिथ्यात्व भी कर्ता और करण कारक क्यों नहीं बन सकता, वह अधिकरण कारक ही क्यों रहा आता है । अधिकरण कारक हो और कर्त्ता और करण कारक न हो इनमें विरोध है क्या ? यदि हा तो इसका खुलासा आगम के अनुसार होना चाहिए ।

अकिंचित्कर पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि मिथ्यात्व परिणामात्मक होने से भाव रूप है यदि ऐसा है तो हम कहते हैं कि कषाय भी परिणामात्मक होने से उसे मात्र भावरूप माना जाये तो क्या आपत्ति है । यदि कहा जाये कि द्रव्यार्थिक चार नयों

से वह बन्ध का कारण है तो बन्ध के कारणों से मिथ्यात्व को कैसे अलग किया जा सकता है ? क्योकि वह भी द्रव्यार्थिक आदि चार नयो से बन्ध का कारण है । यदि कहा जाये कि ऋजुसूत्र नय से वह (मिथ्यात्व) कैसे बन्ध का कारण है ? तो हम कहेगे कि द्रव्यार्थिक नयों मे तीनों काल लिये गये है । उसमे स्थूल ऋजुसूत्रनय गर्भित है । अन्यथा ऋजुसूत्रनय मे स्थूल शब्द नहीं लगाना था ।

अकिं पुस्तक ५८ पेज पर लिखा है "कि इसे यदि सक्षेप मे कहा जाये तो अन्तरग भाव प्रत्यय के द्वारा बहिरग मे द्रव्य प्रत्ययों का निमित्त पाकर बन्ध रूप नैमितिक कार्य सम्पन्न होता है" आगे द्रव्य बन्ध और भाव बन्ध इस शीर्षक के अन्तर्गत "योग, यानि क्रियावती शक्ति व मिथ्यादर्शन यानि भाववति शक्ति " - यह लिखा है और उसमे लिखा है कि भाववति शक्ति द्वारा कोई क्रिया उत्पन्न नही हुआ करती, उसके द्वारा तो मात्र विपरीत परिणाम की उत्पत्ति होती है । अतः मिथ्यात्व को भाववति शक्ति कहना युक्त है ।

पृ ६१ पर लिखा कि कषाय को भी क्रियावति शक्ति मे शामिल किया जा सकता है । कारण कि उसका ही प्रभाव/सम्बन्ध योग पर सर्वाधिक पडता है ।"

हम देखते है कि इस सम्बन्ध मे जितनी भी बाते लिखी है वे सब मिथ्यात्व बन्ध मे अकिंचित्कर है यह सिद्ध करने का दृढतर प्रयत्न मात्र है ।

मिथ्यात्व परिणामात्मक होने पर भी भाव रूप भी है और कर्म बन्ध मे प्रयोजक भी है और कषाय भी परिणामात्मक होने से भाव रूप भी है और कर्म बन्ध मे कारण भी है । जैसे मिथ्यात्व है उसी प्रकार कषाय भी है ।

उसे हम एक शब्द मे कह सकते है कि मिथ्यात्व है इसीलिये कषाय की स्थिति बनती है । देखो मिथ्यात्व के सद्भाव मे ही कषाय कर्म को बाध सकती है, मिथ्यात्व के अभाव मे वह ढीली पडकर क्रमशः अभाव को प्राप्त हो जाती है ।

भाव प्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय साथ-साथ होते है । जहाँ द्रव्य प्रत्यय है उसके उदय से भाव प्रत्यय होता है और भाव प्रत्यय से द्रव्य प्रत्यय होता है, यह परम्परा अनादि की है । इसीलिये आठवे अध्याय के प्रथम और द्वितीय सूत्र द्रव्यार्थिकनय और पर्यायर्थिक नयों की मुख्यता से क्रमशः निबद्ध किये गये है । पहला सूत्र द्रव्य प्रत्यय की प्ररूपणा करने वाला हो और दूसरा सूत्र भाव प्रत्यय की परूपणा करने वाला हो ऐसा नहीं है। जैसे वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे कथन का जो क्रम स्वीकार किया गया है वही तत्त्वार्थसूत्र के आठवे अध्याय मे पहले और दूसरे सूत्र की रचना मे स्वीकार किया गया है । इसी प्रकार अन्य विषय भी जानना चाहिए । इस विषय मे कई भाईयों का सहयोग मिला है उसमे मुख्य हैं प्रकाशचन्द जी हितैषी और श्री पद्मचन्द जी आदि । इसी प्रकार जिन भाईयों और बहनों ने इसमे सहयोग किया है उन सबका मैं अत्यन्त आभारी हू । शेष शुभ ।

प फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री, वर्तमान मे हस्तिनापुर ।

विषयानुक्रमणिका

क्र. स.	विषय	पृष्ठ सख्या
	मगलाचरण	१
१	सुख और उसके साधन।	२
२	परमार्थ सुख का लक्षण।	४
३	तीन प्रश्न और उनका समाधान।	८
४	मिथ्यात्व का स्वरूप।	११
५	मिथ्यात्व की प्राप्ति किस कारण से होती है ?	१२
६	मिथ्यात्व की स्वामी कौन ?	१२
७	मिथ्यात्व का अधिकरण क्या ?	१२
८	मिथ्यात्व के भेद कितने हैं ?	१३
९	मिथ्यात्व का काल।	१३
१०	बन्ध का स्वरूप और उसके कारण।	१४
११	ससार का मूल कारण मिथ्यात्व विषयक उद्धरण।	१६
१२	ऋजुसूत्र नय से विचार।	१७
१३	पर्यायार्थिक नय की सिद्धि कैसे होती है ? उसका एक प्रकार।	१९
१४	कर्मबन्ध के कारणो मे मिथ्यात्व को क्यों लिया गया ?	२०
१५	कर्मबन्ध के हेतुओं मे कर्ता का विचार।	२१
१६	द्रव्य कर्म बन्ध मे मिथ्यात्व करण और अधिकरण कारक भी है।	२३
१७	तत्वार्थ सूत्र के विवक्षित दो सूत्र।	२५
१८	नयो की अपेक्षा कार्य-कारण भाव।	२६
१९	चार प्रकार के बन्ध और उनके उभय नयो से कारण का विचार।	२७
२०	आप्त परीक्षा का कथन।	२८
२१	आगम मे नयों का कथन।	३१
२२	मिथ्यात्व, कषाय के होने मे निमित्त है।	३२
२३	वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार के आधार पर विशेष विचार।	३५
२४	तदनुबन्धिनो का अर्थ।	३८
२५	मिथ्यात्व भी स्थिति और अनुभाग बन्ध में निमित है।	४१
२६	इस सम्बन्ध के दूसरे प्रश्न और उनका समाधान।	४३

२७	बन्ध मे मिथ्यात्व की विशेषता है अनन्तानुबधी की नही।	४६
२८	स्व-परोदयबन्धी प्रकृतियों की परिभाषा।	४९
२९	बन्धापसरण का अर्थ।	५३
३०	विसयोजना	५४
३१	मिथ्यात्व भावात्मक भी है और बन्धक भी	५६
३२	नयो की विवक्षा मे सामान्य विशेष प्रत्यय	५९
३३	पुनः लक्ष्य का प्रतिपादन	६३
३४	द्रव्यार्थिकनय का मुख्य विषय	६८
३५	अनतानुबधी चार सम्यग्दर्शन की कैसे चोर है ?	६८
३६	विपरीताभिनिवेश का आशय	७०
३७	रात्रि भोजन और महाव्रती साधु	७२
३८	सब प्रत्यय निमित्त मात्र है कोई सामान्य नही और न कोई विशेष	७३
३९	अन्वय-व्यतिरेक की अपेक्षा विचार	७६
४०	अनुदय का अर्थ ईषत् उदय नहीं है	७८
४१	एक बात और।	८१
४२	सयोजना के बाद की स्थिति	८१
४३	अध्यात्म मे उल्लेख मात्र	८३
४४	सराग सम्यग्दर्शन किसके होता है	८५
४५	स्व.मान्य प हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री साढूमल	८७
४६	मान्य प जवाहरलाल जी सि शा भिण्डर	८७
४७	मान्य प भुवनेन्द्र कुमार जी शास्त्री बादरी (सागर)	९०
४८	स्व मान्य प कैलासचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री बनारस	९०
४९	मान्य प जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी	९१
५०	प कैलाशचन्द जी शास्त्री ललितपुर	९२
५१	ब्र प्यारेलाल जी सहारनपुर	९२
५२	मान्य प पदमचन्द जी शास्त्री सपादक अनेकान्त दिल्ली	९२
५३	श्री प्यारेलाल जी बडजात्या	९४
५४	आचार्य वीरसागर जी के शिष्य मुनि श्रुतसागर जी	९४
५५	चूलिका	९४
५६	उपसहार	१०७

ॐ

ॐ नमः सिद्धेभ्य

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी ।
वंदित्तु तिजगवदा अरहंता भव्वजीवेहि ॥ १ ॥

आचार्य कहै है जो मै अरहत परमेष्ठी कू वदिकरि चारित्रपाहुड है ताहि कहूँगा कैसे है अरहत परमेष्ठी–अरहत ऐसा प्राकृत अक्षर अपेक्षा तौ ऐसा अर्थ–अकार आदि अक्षर करि तौ "अरि" ऐसा तौ मोहकर्म' बहुरि रकार आदि अक्षर अपेक्षा 'रज ऐसा ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म बहुरि तिस ही रकारकरि 'रहस्य' ऐसा अतराय कर्म ऐसे च्यार घातिकर्म तिनिकू हनना घातना जाकै भया ऐसा अरहत है । बहुरि सस्कृत अपेक्षा "अर्ह" ऐसा पूजा अर्थ विषै धातु है ताका "अर्हत्" ऐसा निपज्जै तब पूजा योग्य होय ताकू अर्हत् कहिये सो भव्यजीवनिकरि पूज्य है । बहुरि परमेष्ठी कहने तै परम कहिये उत्कृष्ट' इष्ट कहिये 'पूज्य' होय सो परमेष्ठी कहिये । अथवा परम जो उत्कृष्ट पद ता विषै तिष्ठै ऐसा होय सो परमेष्ठी । ऐसा इन्द्रादि करि पूज्य अरहत परमेष्ठी है। बहुरि कैसे है सर्वज्ञ सर्व लोकालोक स्वरुप चराचर पदार्थनिकू प्रत्यक्ष जानै सो सर्वज्ञ है । बहुरि कैसे हैं–निर्मोह मोहनीय नामा कर्म की प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है ताकरि रहित है । बहुरि कैसे है–वीतराग है विशेषकर जाकै राग दूर भया होय सो वीतराग, सो जिनकै चारित्र मोहकर्म का उदयतै होय ऐसा रागद्वेष भी नाही है । बहुरि कैसे है–त्रिजगद्वद्य हैं, तीन जगत के प्राणी तथा तिनिके स्वामी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तिनिकरि वदिवे योग्य हैं ऐसे अरहत पदकू विशेष्य करि अन्य पद विशेषण करि अर्थ किया है। बहुरि सर्वज्ञ पदकू विशेष्यकरि अन्य पद विशेषण है । करिये ऐसैं भी अर्थ होय है तहाँ अरहत भव्यजीवनिकरि पूज्य हैं ऐसा विशेषण होय है[2] ।

---

१ चा पा गा १ ।

२ श्री प जयचन्दजी छाबडा का अनुवाद ।

१. सुख और उसके साधन

किसी अन्य जड वस्तु मे परमार्थ से और असदभूत व्यवहारनय से भी सुख नहीं पाया जाता और न ही अन्य चेतन और जड वस्तु परमार्थ से सुख का साधन बन सकती है। सुख आत्मा का स्वभाव है[3]। वह मोह और क्षोभ के अभाव मे उत्पन्न होता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा मे अशतः सुख की प्रगटता हो जाती है क्योंकि सम्यग्दृष्टि आत्मा जानता है कि–

जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहूं नहीं होसी काहे होत अधीरा रे॥[४]

वह जानता है कि जब जो होना है वह नियम से होगा ही, इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव अशतः परमार्थ से आकुलित नहीं होता, इसलिये उसके अशतः परमार्थ सुख मानने मे कोई बाधा नहीं आती। उसके इन्द्रिय सुखों मे सुखबुद्धि दृष्टि की अपेक्षा से नहीं होती।

नियमसार गा १४ मे ज्ञान और दर्शन की स्वभाव और विभाव पर्यायो के उल्लेख करने के बाद उनके लक्षण बतलाते हुए वहाँ लिखा है–

पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो[५]॥ १४॥

उसका अर्थ है कि पर्याये दो प्रकार की है-एक स्व-पर सापेक्ष पर्याय और दूसरी निरपेक्ष पर्याय।

यहाँ स्वभाव पर्याय को जो निरपेक्ष कहा है, उससे ज्ञात होता है कि वह अपने काल मे स्वय ही होती है। उपादान, जो कार्य के अव्यवहित पूर्व समय में ही होता है, उसका व्यय होकर ही कार्य की उत्पत्ति होती है, इसलिये कार्य उपादान से होता है यह भी परमार्थ से नहीं बनता, क्योकि यह सद्‌भूत व्यवहारनय से सद्‌भूत कारण पूर्वक होता है यह कथन भी सद्‌भूत व्यवहार का है।

कर्म का उदय आदि जीव को परिणमाता है यह कहना भी नहीं बनता, क्योंकि स्वय परिणमन नहीं करते हुए जीव को कर्म परिणमाता है या परिणमन करते हुए जीव को कर्म परिणमाता है, यो दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं[६]?

पहले प्रश्न को स्वीकार करने पर तो यह आपत्ति आती है कि जो स्वय न परिणमे उसे अन्य कैसे परिणमा सकता है? क्योंकि जीव मे यदि परिणमन रूप शक्ति नहीं है तो अन्य द्वारा उसमे कैसे उत्पन्न की जा सकती है? कहा भी है–न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते[७]।

---

३ स प्रा सर्ववि अधिकार ५ुवे न अनाकुलत्व लक्षणा सुखशक्ति। स. प्रा गा ७१ इह किल स्वभावमात्र वस्तु।

४ अध्यात्म पद सग्रह पृष्ठ ८१।

५ नि सा गा १४।

६ स प्रा गा ११६-११७ आ ख्या टी।

७ वही।

दूसरे प्रश्न को स्वीकार करने पर भी यह आपत्ति आती है कि जब स्वय जीव परिणमन करने रूप शक्ति से युक्त है तो उसे अपने परिणमन मे अन्य की अपेक्षा कैसे हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती है। कहा भी है –

"नहि वस्तुशक्तयः परमपेक्षन्ते"[८] ॥ ११७ ॥ आत्मख्याति टीका

इन आगम प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि जिस द्रव्य मे जो शक्ति होती है वह स्वय ही अपना कार्य करने मे समर्थ होती है। जीव और उससे भिन्न अन्य जड़ द्रव्यों मे स्वय जब परिणमन करने की शक्ति है तो वह अपने काल मे स्वय ही परिणमनशील मानी गई है।

यहाँ शंका होती है कि यह कथन स्वभाव पर्याय मे तो बन जायेगा, विभाव पर्याय मे कैसे बनेगा ? क्योंकि उसे असद्भूत व्यवहार से स्व पर सापेक्ष माना गया है ?

समाधान यह है कि नय दो प्रकार के है–एक निश्चयनय और दूसरा–व्यवहारनय। निश्चयनय से देखा जाय तो जिस समय जो भी पर्यायरूप कार्य उत्पन्न होता है वह स्वय अपनी सामर्थ्य से ही उत्पन्न होता है। वह आगे-पीछे हो ऐसा नहीं बनता, क्योंकि निश्चय, शक्ति के आश्रित अर्थात् स्वाश्रित होता है। उस पर यह व्यवहार लागू नहीं पड़ता कि वह अपने परिणमन आदि कार्य मे पर की अपेक्षा करे। जैसे अकेला स्फटिक मणि परिणाम स्वभाव होने पर तथा अकेला होने पर भी स्वय शुद्ध स्वभाव रूप से परिणमता है। अकेला होने पर वह लालरूप से नहीं परिणमता, किन्तु जब उसका सम्पर्क लाल वस्तु से होता है, तब वह लाल रूप से भी परिणमन करने लगता है और जब उसका सम्पर्क काली वस्तु से होता है तब वह काले रूप से परिणमन करने लगता है[९]। इसी प्रकार अकेला ज्ञानी जीव भी स्वय रागादि भावरूप से नहीं परिणमता, किन्तु रागादि दोषों के कारण वह जीव रागी आदि रूप मे किया जाता है।

इससे हम जानते है कि "पराश्रितो व्यवहारनयः"[१०] इस नियम के अनुसार निमित्त का सम्पर्क होने पर जीव भी सयोग सिद्ध सम्बन्ध[११] वश जब तक अज्ञान भाव के कारण आत्मा और क्रोधादि भावो मे भेद नहीं करता, तब तक अज्ञानी हुआ द्रव्यकर्मों से बधता रहता है। इसलिये विभाव पर्याय का कारण स्वय मे होकरभी पर का सम्पर्क सिद्ध होता है। इस प्रकार जब पर मे असद्भूत व्यवहारनय से कारणताबन जाती है, तो उससे जीव मे कारणता बनने मे कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि पर के निमित्त से कारणता सिद्ध होने पर जिसमे यह कारणता कही गई है, वह वस्तु भी स्वय कारण रूप से सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि जीव और पुद्गल की विभाव परिणति मे "स्व" और "पर" की निमित्तता को आगम स्वीकार करता है। स्वभाव परिणति को नही क्योंकि वह अपने परिणाम स्वभाव के कारण होती है।

---

८ स प्रा गा ११६।

९ स प्रा गा २७०-२७६, आ ख्या टी ।

१० आ ख्या टी स प्रा गा २७२।

११ आ ख्या टी स प्रा गा ६९-७०।

२. परमार्थ सुख का लक्षण

अभी हम परमार्थ सुख की सिद्धि कर आये है, इसलिये यह प्रश्न होता है कि परमार्थ सुख क्या है ? समाधान यह है कि समयप्राभृत मे परमार्थ सुख का लक्षण करते हुए उसके परिशिष्ट अधिकार मे जो ४७ शक्तियो का विवेचन किया गया उनमे एक "सुख" नाम की शक्ति है। उसका लक्षण करते हुए वहाँ लिखा है –

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः जिसका लक्षण अनाकुलता है उसका नाम सुखशक्ति है[१२]। वह सम्यग्दृष्टि से अशतः प्रारम्भ होकर अरहतो और सिद्धो मे पूर्णता को प्राप्त होती है। अविरत सम्यग्दृष्टियो के दर्शन मोहनीय की तीन और अनन्तानुबधी चार का उपशम या क्षय हो जाने से तथा वेदक सम्यग्दृष्टियो के सम्यक् प्रकृति के उदय रहने पर ही शेष ६ कर्मो का उदयाभावी क्षय और सदवस्था रूप उपशम हो जाने से अशतः परमार्थ सुख के होने मे कोई बाधा नही आती।

यदि कहा जाय कि सम्यग्दृष्टि जीव के शेष कषायो और यथासभव नो कषायो का उदय और उदीरणा रहने से आकुलता देखी जाती है इसलिये चौथे गुणस्थान से लेकर १०वे गुणस्थान तक परमार्थ सुख के मानने मे बाधा आती है ? समाधान यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यग्ज्ञान का उदय हो जाने से वह बुद्धिरूपी छैनी द्वारा राग द्वेष और मोह के उदय से स्वभावभूत आत्मा को प्रथक् कर लेता है। जो पर्यायबुद्धि अज्ञानी के होती है या रहती है, वह ज्ञानी के नही रहती और न होती है। वह जानता है कि मेरा आत्मा अनादि-अनन्त है वह विशद ज्योतिस्वरूप है, अतएव वह निरन्तर उदयस्वरुप ही है। ऐसा तो मै हू। जो कर्मबध होता है वह आत्मा मेरे मे अर्थात् ज्ञायकस्वरूप मे नही होता, क्योकि राग-द्वेष की व्याप्ति पर्याय के साथ है, स्वभावभूत आत्मा के साथ नही। स्वभाव की अपेक्षा से तो मै शुद्ध ही हू अर्थात् कर्मो के उदय-उदीरणा रूप पर्याय रूप आत्मा से मै भिन्न हू। लोक मे जो नव पदार्थ दिखाई देते है उनसे मै सर्वथा भिन्न हू। इसी बात को समयप्राभृत के मोक्ष अधिकार मे स्वीकार करते हुए कहा है –

कह तो घिप्पइ अप्पा पण्णाए तो उघिप्पऐ अप्पा।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णा एव घेत्तव्वो ॥ २९६ ॥

वह शुद्ध आत्मा कैसे ग्रहण किया जाता है ? वह शुद्ध आत्मा प्रज्ञा से ग्रहण किया जाता है। जैसे प्रज्ञा के द्वारा शुद्ध आत्मा को विभक्त किया है वैसे ही उसके (प्रज्ञा) द्वारा उसे (शुद्ध आत्मा को) ग्रहण करना चाहिए ॥ २९६ ॥

यह है भेदविज्ञान की कला। भेदविज्ञान ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा पर्याय स्वरूप समल आत्मा से स्वभावभूत शुद्ध आत्मा को भिन्न किया जाता है। उसके द्वारा भीतर देखने पर राग-द्वेष स्वरूप आत्मा नही दिखाई देता, ज्ञानदर्शन स्वरूप

---

१२ आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये। छहढाला, अ -३-१।

स्वभावभूत आत्मा ही दिखाई देता है। इसलिये आचार्यों ने ऐसी प्रज्ञा को ही पैनी छैनी की उपमा दी है। जैसे पैनी छैनी के द्वारा किसी लकडी को फाडकर दो रूप कर दिया जाता है, वैसे ही ससार मे पर्यायस्वरूप आत्मा से स्वभावभूत आत्मा को भिन्न कर उसका ही सम्यग्दृष्टि आत्मा अनुभव करता है। इसी अभिप्राय से ज्ञानी आत्मा का लक्षण करते हुए समयप्राभृत मे कर्ता-कर्म अधिकार के अन्तर्गत कहा है —

कम्मस्स य परिणाम णोकम्मस्स य तहेव परिणाम।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ७५ ॥

जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को तथा नोकर्म के परिणाम को नही करता, किन्तु जानता है वह ज्ञानी अर्थात् सम्यग्दृष्टि है।

यह कर्ता-कर्म अधिकार है, इसलिये उस दृष्टि से यहाँ विवेचन किया गया है। वस्तुतः मोह और रागद्वेष ही बन्ध के कर्ता होते है। सम्यग्दृष्टि तो मोह (मिथ्यात्व) से रहित होता ही है। उसके अनन्तानुबधी का उदय भी न रहने से वह सम्यग्दृष्टि हुआ है, तथा उसके अर्थात् पर्यायभूत आत्मा के अप्रत्याख्यानावरण आदि १२ कषायो का और यथासमव नव नोकषायों का उदय उदीरणा अभी विद्यमान है, पर वह अपने उपयोग मे उन कर्मों के उदय-उदीरणा को नही अनुभवता अपने ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मा को ही अनुभवता है इसीलिये यहाँ कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि आत्मा कर्म और नोकर्म का बन्धक नहीं होता क्योकि कर्म और नोकर्म के बध की व्याप्ति मिथ्यात्व और रागद्वेष के साथ है, वह ज्ञान-दर्शनस्वरूप स्वभावभूत आत्मा के साथ नहीं, अतः वह स्वभावभूत आत्मा जब रागद्वेष का कर्ता ही नहीं होता तो उसके कर्म और नोकर्म के बन्ध की समावना कैसे बन सकती है ?

शका —सम्यग्दृष्टिआत्मा अपने उपयोग के द्वारा बन्धस्वरूप रागद्वेष को विषय नहीं करता तो न करे पर्याय मे तो वे है ही और पर्याय से सम्यग्दृष्टि आत्मा सर्वथा भिन्न नही हुआ है, इसलिये उसके बन्धस्वरूप रागद्वेष के निमित्त से होनेवाले पुद्गल बन्ध का कैसे निषेध किया जाता है ?

समाधान —आत्मा और बन्ध के नियत स्वलक्षण है। आत्मा का लक्षण उपयोग स्वभाव है और बन्ध का लक्षण राग-द्वेषरूप कर्म के साथ एकक्षेत्रावगाह रूप सबध है। अज्ञानी जीव उसे ही तथा उसके उदयादि से हुए भावो को अपना स्वरूप (लक्षण) समझता है। इस प्रकार इन दोनों मे लक्षण भेद होने से वे यद्यपि एक जैसे प्रतिभासित होते है, पर उनमे लक्षण भेदरूप सूक्ष्म सन्धि तो है ही। उस सन्धि को जानकर उस सन्धि में उपयोग रूपी पैनी छैनी डालने से वे पृथक-पृथक हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान-दर्शनस्वरूप आत्मा भिन्न पड जाता है और ऐसे आत्मा से रागद्वेषरूप बन्ध भी भिन्न पड़ जाता है[१३]।

---

१३ स प्रा गा १४ आत्मख्याति टी (यथा यथास्त्रवेभ्यश्च निवर्तते तथा तथा विज्ञानघनस्वमावो भवतीति)

इसका अभिप्राय यह है कि बन्ध और बन्ध के कारणो से ज्ञान-दर्शन स्वरूप आत्मा भिन्न अनुभव मे आने लगता है। इसी को स प्र के मोक्षाधिकार मे कहा है –

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ २९४ ॥

जीव तथा बन्ध नियत स्वलक्षणों से (अपने-अपने नियत लक्षणों से) छेदे जाते हैं, प्रज्ञारूपी छैनी के द्वारा छेदे जाने पर वे नानात्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् पृथक्-पृथक् अनुभव मे आने लगते ॥ २९४ ॥

इसकी आत्मख्याति टीका मे लिखा है –आत्मबन्धयोर्द्विधाकरणे कार्ये कर्तुरात्मनः करणमीमासायां, निश्चयतः स्वतो भिन्नकरणासम्भवात्, भगवती प्रज्ञैव छेदनात्मक करणम् । "तया हि तौ छिन्नौ नानात्वमवश्यमेवापद्येते, ततः प्रज्ञयै–वात्मबन्धयोर्द्विधाकरणम् ।"

आत्मा और बन्ध के द्विधा करने रूप कार्य मे कर्ता जो आत्मा उसके करणसम्बन्धी मीमासा करने पर निश्चयतः (निश्चय नय से) अपने से भिन्न करण का अभाव होने से भगवती-प्रज्ञा ही (ज्ञानस्वरूप उपयोगात्मक बुद्धि ही) (छेदनात्मक) (छेदने के स्वभाव वाला) करण है। उस प्रज्ञा के द्वारा उनका छेद करने पर वे अवश्य ही नानात्व को (अलग-अलग भेद को) प्राप्त होते है इसलिये प्रज्ञा द्वारा ही आत्मा और बन्ध को द्विधा किया जाता है। इसका आशय है कि उपयोगस्वरूप बुद्धि के द्वारा आत्मा और बन्ध को भिन्न-भिन्न जानना ही उनमे भेद करना है, ऐसा करने से (उपयोग द्वारा स्वभावभूत आत्मा की भावना करने से) बन्धनस्वरूप राग-द्वेष स्वय आत्मा से पृथक पड जाते है। इसी का नाम भेद विज्ञान है। यह कला जिसने अर्जित कर ली, उसे ही सम्यग्दृष्टि कहते है। ऐसा होना ही मोक्षमार्ग की प्रथम सीढी[१४] पर पैर रखना है। इस विवेचन से हम जानते है कि कर्ता, करण और अधिकरण स्वय मे ही वास्तव मे बनते है। परमार्थ से कोई किसी का कर्ता नही होता और करण तथा अधिकरण भी नहीं होता। व्यवहारनयसे मै कर्मों से बधा हू –ऐसी कल्पना लौकिक जन ही करते है, ज्ञानीजन नही। इस बात को स्पष्ट करते हुए सर्वार्थसिद्धि मे आकाश द्रव्य को विवक्षित कर कहा भी है[१५] –

शका –यदि धर्मादिक द्रव्यो का लोकाकाश आधार है तो आकाश का कौन आधार है ?

समाधान –आकाश का अन्य आधार नही है, क्योकि आकाश स्वप्रतिष्ठित है।

शका – यदि आकाश स्वप्रतिष्ठित है तो धर्मादिक द्रव्य भी स्वप्रतिष्ठित होने चाहिए। यदि धर्मादिक द्रव्यो का अन्य आधार माना जाता है तो आकाश का भी अन्य आधार मानना चाहिए। और ऐसा मानने पर अनवस्था दोष प्राप्त होता है ?

---

१४ मोक्ष महल की प्रथम सीढी या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥ छहढाला

१५ उक्ताना धर्मादीना शरीरे हस्तादय" इति - स सि ५/१२।

समाधान —यह कोई दोष नही है, क्योकि आकाश से अधिक परिमाण वाला अन्य द्रव्य नही है, जहाँ आकाश स्थित हो यह कहा जाय। वह सबसे अनन्त है, परन्तु धर्मादिक द्रव्यों का आकाश अधिकरण है यह व्यवहारनय की अपेक्षा कहा जाता है। एवभूतनय की अपेक्षा तो सब द्रव्य स्वप्रतिष्ठित ही है। कहा भी जाता है कि "आप कहाँ रहते हो ? अपने में"। धर्मादिक द्रव्य लोकाकाश के बाहर नहीं हैं, यहाँ आधार-आधेय कल्पना से इतना ही फलितार्थ लिया गया है।

शका —लोक मे जो पूर्वोत्तर काल भावी होते है उन्ही का आधार-आधेय भाव देखा गया है। जैसे कि बेरो का आधार कुण्ड होता है उसी प्रकार आकाश पूर्वकालभावी हो और धर्मादिक द्रव्य पीछे से उत्पन्न हुए हो, ऐसा तो है नहीं अतः व्यवहारनय की अपेक्षा भी आधार-आधेय कल्पना नहीं बनती ?

समाधान —यह कोई दोष नही है क्योकि एकसाथ होने वाले पदार्थों मे आधार-आधेय भाव देखा जाता है। यथा-घट मे रूपादिक है और शरीर मे हस्त आदि है।

इस प्रकार स्वय एक वस्तु मे कर्ता-कर्म की सिद्धि हो जाने पर जैसे निश्चयनय से एक वस्तु मे छहो कारक बन जाते है[१६] वैसे ही असद्भूत व्यवहारनय से भी छहों कारक दो द्रव्यों की पर्यायो मे घटित किये जा सकते है, मात्र कार्य के समय अन्य द्रव्य मे पर्याय की व्यवहार से अनुकूलता होना चाहिए।

इस प्रकार इतना विवेचन करने के बाद अकिचित्कर पुस्तक को माध्यम बनाकर विवेचन किया जाता है, क्योकि उसमे कर्मबन्ध के प्रति मिथ्यात्व को अकिचित्कर सिद्ध किया गया है। जब कि बन्ध के कारणों का विवेचन करते समय समयप्राभृत और तत्वार्थसूत्र तथा उनकी टीकाओं मे द्रव्यकर्म बन्धनो के कारणो मे मिथ्यात्व को प्रमुख स्थान दिया गया है। अकिचित्कर पुस्तक मे मिथ्यात्व को आधार (अधिकरण) कारक तो माना गया है पर उसे कर्ताकारक और करणकारक नही माना गया है। जब कि वह निमित्तपने की अपेक्षा करण कारक से है ही, कर्ता कारक भी सिद्ध हो जाता है। अकिचित्कर पुस्तक मे लिखा है —ध्यान रहे —अधिकरण कभी भी कर्ता या कारण नहीं हुआ करता और न ही वह कोई कार्य ही करता है। कार्य तो हमेशा कर्ता और करण के द्वारा ही हुआ करते हैं। यहा जब मिथ्यात्व को अधिकरण के रूप मे प्रयुक्त किया है, तब उसे न कर्ता कहा जा सकता है और न ही करण। अनन्तानुबधी की बात अलग है। इसके दो अधिकरण हैं —प्रथम गुणस्थान और द्वितीय गुणस्थान। प्रथम गुणस्थान मे वह अपने साथ-साथ मिथ्यात्व को भी बाधती है तथा द्वितीय गुणस्थान में मात्र अपना ही बन्ध करती है।

मै समझता हू कि इस तरह की विवक्षाओं को लेकर यदि मिथ्यात्व को कर्ता और करणरूप से कार्य के प्रति अकिंचित्कर कह दें तो कोई अन्योक्ति नहीं कहलानी चाहिए।

---

१६ प्र सा गा १६ टीका।

जहाँ आस्रव और बन्ध का कर्ता और करण मिथ्यात्व नही होता तब अकिचित्कर ही तो हुआ– यानी आस्रव और बन्ध मे उसका कोई उल्लेखनीय योगदान नही है। अकिचित्कर पुस्तक पृ ६५-६६ का यह उल्लेख है।

३. तीन प्रश्न और उनका समाधान

इस कथन मे तीन बाते विचारणीय है–(१) अधिकरण कभी भी कर्ता या करण नहीं हुआ करता। (२) प्रथम गुणस्थान मे वह (अनन्तानुबधी) अपने साथ-साथ मिथ्यात्व को भी बाँधती है। (३) इस तरह की विवक्षाओं को लेकर यदि मिथ्यात्व को कर्ता और करण रूप से कार्य के प्रति अकिचित्कर कह दे तो कोई अन्योक्ति नही कहलानी चाहिए।

१ इन तीन बातो मे सबसे पहले हम तीसरी बात पर विचार करना इष्ट मानते है।अकिचित्कर पुस्तक की "इस तरह की विवक्षाओं से यह तो मालूम पडता है कि अकिचित्कर पुस्तक मे दूसरी प्रकार की विवक्षाए भी मान्य रही हैं। उनके आधार पर अधिकरणकारक कर्ता या करणकारक भी हो सकते थे। यदि मिथ्यात्व को अकिचित्कर न कहकर यह पुस्तक लिखी गई होती तो समव था कि इस दृष्टि से यह पुस्तक विवाद का विषय नही बनती। यह तो मनीषी जानते है कि, विवक्षा के अनुसार कारक की प्रवृति होती है। कहा भी है– **विवक्षातः कारकप्रवृतेः**'। इसी बात को स्पष्ट करते हुए धवला (पुस्तक १२) के पृष्ठ २७६ मे जो लिखा है उससे भी यही मालूम पड़ता है कि जहाँ जैसी विवक्षा होती है उसके अनुसार कारक की प्रवृत्ति कर ली जाती है। यथा –

कथ पच्चयस्स सत्तमीए उप्पत्ती ? ण, पाणादिवादपच्चयविसए णाणावरणीय वेयणा वट्टदि त्ति सबधिज्जमाणे सत्तमी विहत्तीए वइसइयाए उप्पत्ति पडि विरोहाभावादो। अथवा, तइयत्थे सत्तमी दट्ठव्वा। तथा च पाणादिवादपच्चएण णाणावरणीयवयेणा होदि त्ति सिद्धो सुत्तद्ठो। ध पु. १२, पृ २७६.

शका –प्रत्यय शब्द की सप्तमी विभक्ति मे उत्पत्ति कैसे बन सकती है ?

समाधान –नही, क्योंकि प्राणातिपात प्रत्यय के विषय मे ज्ञानावरण कर्म की वेदना वर्तती है ऐसा सम्बध होने पर विषयार्थक सप्तमी विभक्ति की उत्पत्ति में विरोध नहीं आता। अथवा तृतीया विभक्ति के अर्थ मे सप्तमी विभक्ति जाननी चाहिए। ऐसा स्वीकार करने पर भी प्राणतिपात प्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है, इस प्रकार सूत्र का अर्थ सिद्ध हुआ।

इस उद्धरण से हम जानते हैं कि, अधिकरण कारक के अर्थ मे विषयार्थक सप्तमी विभक्ति भी घटित हो जाती है और विवक्षा के अनुसार कारक की प्रवृत्ति होती है। इस सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर आचार्य वीरसेन स्वामी ने करणकारक के अर्थ मे उसका

अर्थ तृतीया विभक्ति परक भी स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार द्रव्यकर्मबन्ध के प्रति प्रत्ययपना अधिकरणकारक मे भी बन जाता है और करणकारक मे भी बन जाता है!

शका —यदि अधिकरण की कारक मे परिगणना की जाती है तो वह क्यो ? यदि वह कोई कार्य नही करता तो उसकी कारको मे परिगणना नहीं होनी चाहिए थी ?

समाधान —जो कारण का आधार था वही पर्याय के भेद से कार्य का आधार हो गया इस प्रकार अपेक्षा भेद से कारण का आधार भिन्न हुआ और कार्य का आधार भिन्नहुआ। इस प्रकार आधार भेद से तो उसकी कारको मे परिगणना की जाती है। और इसीलिए वह कार्य के प्रति कारण होकर भी उस आधार से कार्य हुआ —ऐसा माना जाता है।

कारक छह है —कर्ता, कर्म करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण। अपने कार्य के प्रति स्वतत्र होने से कर्ता की परिगणना कारकों मे की जाती है, अपने परिणाम स्वभाव के द्वारा प्राप्त करने योग्य होने से कर्म की कारको मे गिनती की जाती है, अपने परिणाम स्वभाव के प्रति साधकतम होने से करण की गिनती कारको मे होती है, अपने परिणाम स्वभावरूप कर्म के द्वारा समाश्रियमाण होने से सम्प्रदान को कारको मे गिनाया जाता है पहले के परिणाम स्वभाव को त्यागकर ध्रुवभाव का आलम्बन लेने से वह अपादानपने को प्राप्त हुआ है तथा अपने प्रतिसमय होनेवाले परिणामस्वभाव का आधार होने से वह अधिकरणकारक रूप से परिगणित किया गया है।

अथवा वीरसेनस्वामी के अभिप्रायानुसार सप्तमी विभक्ति का अर्थ तृतीया विभक्ति परक करने से भी करणकारक की सिद्धि हो जाती है। इसलिए अकिंचित्कर पुस्तक का यह कथन नही बनता कि अधिकरण कारक कभी भी कर्ता और करणकारक नही हुआ करता।" यहीं बात खुद्दाबध से भी सिद्ध होती है।

यह तो सब मनीषी जानते है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व को निमित्तकर जिन १६ प्रकृतियो का बन्ध होता है[१७] उनमे एकेन्द्रिय जाति का भी समावेश है। तथा एकेन्द्रिय जाति का उदय पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था मे मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही होता है[१८]।

खुद्दाबन्ध मे लिखा है कि "बधा" शब्द का अर्थ "बन्धक" करना चाहिये, क्योकि दोनो पदों की एक कारक (कर्ताकारक) मे निष्पत्ति हुई है। इसलिये मिथ्यात्व गुणस्थान मे जो १६ प्रकृतियाँ बधती है उनका बन्धक नियम से मिथ्यात्वी जीव होता है, क्योकि मिथ्यात्व के उदय के साथ सोलह प्रकृतियो के बन्ध का अन्वय-व्यतिरेक उपलब्ध होता है।

इस उदाहरण से भी यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वी जीव उक्त १६ प्रकृतियो को नियम से बाधता है। चाहे वह व्यवधान से १६ प्रकृतियो के भीतर कम को भी बाधे तो

---

१७ मिच्छत्तहुऽसढाऽसपत्तेयक्खथावरादाव ।
सुहुमतिय वियलिंदिय णिरयदुणिरयाउग मिच्छे ॥१५॥ गो कर्म का ।

१८. गो क, गा न ३०६-३०७। खु ब, पृ १०।

अगले समय मे अधिक को बाधे, पर मिथ्यात्व के उदय से ही सोलह प्रकृतियो को बाधता है यह नियम है। उस समय उन प्रकृतियों के बन्ध का कर्ता और करण कारक मिथ्यात्व हो जाता है।

इसप्रकार अधिकरण कारक में जितना विवेचन किया जाता है वह सब विवेचन कर्ता और करणकारक मे भी बन जाता है।

२ –अकिंचित्कर पुस्तक मे जो यह कहा गया है कि "अधिकरण कभी भी कर्ता और करण नहीं हुआ करता।' सो इस बात का उत्तर तीसरे प्रश्न के उत्तर से हो जाता है।

अब रहा दूसरा प्रश्न, उसमे कहा गया है कि "अनन्तानुबधी अपने साथ-साथ मिथ्यात्व को भी बाधती है" सो इसका उत्तर धवला के इस कथन से हो जाता हैकि मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियो के बन्ध का कारण मिथ्यात्व के उदय के साथ मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों के बन्ध का अन्वय-व्यतिरेक उपलब्ध होता है, अनन्तानुबधी के साथ नही[१९] इसलिये "अनन्तानुबधी अपने साथ-साथ मिथ्यात्व को भी बाधती है" यह कहनाआगम विरुद्ध हो जाता है। प्रवचनसार मे साधु को आगमचक्षु[२०] इसीलिए कहा गया है कि वह आगम के अनुसार ही कथन करता है। कहा भी है कि "**सूक्ष्म जिनोदित तत्वं हेतुभिनैव हन्यते**" अर्थात् जिनेन्द्रदेव ने जो तत्व की प्ररूपणा की है उसे हेतुओं द्वारा खण्डित नहीं किया जा सकता। यही हम अकिंचित्कर पुस्तक की प्ररूपणा से भी आशा करते थे कि उसमे जो कुछ लिखा गया है वह शास्त्र सम्मत होना चाहिए था। परन्तु ऐसा दृष्टिगत नहीं हुआ।

यद्यपि इस कथन का समाधान अन्य प्रकारो से भी हो सकता है, पर हमने अन्य आधारो से विचार न कर यहा मुख्यतः नमूने के आधार पर आगम सम्मत एक ही बात कही है। इससे मालूम पड जाता है कि 'अकिंचित्कर' पूरी पुस्तक विचारणीय है, अतः इस आधार पर क्रम से विचार करते हैं।

'अकिंचित्कर' पुस्तक के लेखक के समान हम भी छद्मस्थ है, इसलिये कदाचित् आगम के अनुसार कथन मे भूल हो जाय तो विद्वान पुरूष भूल को सुधार कर हमे क्षमा करेगे तथा छल ग्रहण नहीं करेगे। आगम की परम्परा को चलाने का यही मार्ग है। इसे पुराने आचार्यों ने भी स्वीकार किया था। हम भी उस मार्ग का अनुसरण करेगे। इसी से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। आगम मे हितकारी क्या है और अहितकारी क्या है ? इस शका का समाधान करते हुए रत्नकरण्डश्रावकाचार[२१] मे लिखा है –

धर्म को जीवन में पूरी तरह से उतारने वाले तीर्थंकर और उनके मार्गपर पूरी तरह से चलनेवाले आचार्य आदि कहते हैं कि, इस ससार में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

१९ ध पु ७ पृ १०– सोलसण्ह पयडीण बधस्य मिच्छत्तुदओ कारण, तदुदयण्णयवदिरेगेहि सोलसपयडीबधस्स अण्णयवदिरेगाणमुवलमादो।

२० प्र सा गा २३४।

२१ र क श्रा श्लोक ३१।

और सम्यक्चारित्र ही हितकारी हैं तथा ससार को बढानेवाले मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ही अहितकारी है[२२] इसी बात को दूसरे शब्दों मे स्पष्ट करते हुए धवला पु. ७ के पृष्ठ ६ पर लिखा है –

ससार मे बन्ध के (अहित के) कारण मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग है तथा मोक्ष के (हित के) कारण सम्यग्दर्शन, सयम, अकषायभाव और अयोग हैं[२३]।

४. मिथ्यात्व का स्वरूप

आगम मे ससार के कारणो का विचार करते हुए सर्वप्रथम मिथ्यात्व क्या है इस पर विचार किया गया है। मिथ्यात्व के स्वरुप का विचार कई दृष्टियो से किया गया है। रत्नकरण्डश्रावकाचार चरणानुयोग का मुख्य ग्रन्थ है। उसमे विचार करते हुए बतलाया है कि परमार्थस्वरुप देव, शास्त्र और गुरू का तीन मूढता, छह अनायतन, आठ मद और शकादिक आठ दोषों से रहित तथा आठ अग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तथा इससे विपरीत श्रद्धान करना मिथ्यात्व है[२४]। पचास्तिकाय[२५] मे लिखा है कि जिसके हृदय मे परद्रव्य के विषय मे अणुमात्र भी राग विद्यमान है वह ११ अग और ६ पूर्व का जानकार होकर भी अपने आत्मा को नहीं जानता, वह तीव्र मिथ्यात्वी है। पचास्तिकाय छह द्रव्यो के स्वरूप आदि का कथन करनेवाला मुख्य शास्त्र है। उसमे मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ? इसको बतलाने के अभिप्राय से उक्त कथन किया है। द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ समयसार मे बतलाया है कि जैसे वस्त्र का श्वेतपना मैल के मिलने से लिप्त होता हुआ नष्ट हो जाता है–तिरोभूत हो जाता है उसीप्रकार मिथ्यात्वरूपी मैल से व्याप्त होता हुआ–लिप्त होता हुआ वास्तव मे सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है, तिरोभूत हो जाता है ऐसा जानना चाहिए[२६]। ज्ञान का सम्यक्त्व (सम्यक्पना) जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है वह परभावस्वरूप मिथ्यात्व नामक कर्मरुपी मैल के द्वारा व्याप्त होने से तिरोभूत हो जाता है।

---

२२ ध पु ७, पृ ६ –मिच्छत्तासजम-कसाय-जोगा बधकारणाणि। सम्मदसण –सजमाकसायाजोगा मोक्खकारणाणि। वुत्त च –
मिच्छत्ताविरदी वि य कसायजोगा य आसवा होंति।
दसण-विरमण-णिग्गह-णिरोहया सवरो होंति ॥२॥ ध पु ७, पृ ६।

२३ मूला गा ७०७ –
किं केण कस्स कत्थ व केवचिर कदिविधो य भावो य।
छहि अणि ओगदारे हि सव्वे भावाणुगतव्वा ॥७०७॥
तथा त सू, अ १ सू, ७–निर्देश स्वामित्व साधनाधिकरण स्थिति विधानतः।

२४ र क श्रा श्लो ४।

२५ पचा गा १६७, तथा स प्रा गा २०१, २०२।

२६ स प्रा गा १५७ की आत्मख्याति टी।

५. मिथ्यात्व की प्राप्ति किस कारण से होती है ?

यह तो सब जानते है कि कुदेव मे देवबुद्धि कुगुरू मे गुरूबुद्धि और कुशास्त्र मे शास्त्रबुद्धि आदि होने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। अथवा अतत्व मे तत्वबुद्धि करने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है[२७]। अथवा हे त्रिभुवनपते। आपके शासन से बाह्य (सर्वथा एकान्तवादी) जन सुख की प्राप्ति के लिए दुःखो की (पचाग्नितपादि की), गुणो की प्राप्ति के लिए दोषो की (परनिन्दा आदि की) तथा धर्म की प्राप्ति के लिए पाप कार्यों की (नरमेघ आदि यज्ञो की) उपासना करते है। मानो बालक तेल की प्राप्ति के लिए बालू के समूह को पेलते है[२८]। विषाप स्तो श्लो १३। इस प्रकार के श्रद्धान से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। मिथ्यात्व की प्राप्ति के ये मुख्य कारण है। शिवपूजा मे शासनदेव-देवी की पूजा भी सम्मिलित है। यह भी मिथ्यात्व की प्राप्ति का कारण है।

६. मिथ्यात्व का स्वामी कौन ?

मिथ्यात्व की प्राप्ति मे कारणभूत कार्यों को करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व का स्वामी है। कारणो का निर्देश पहले ही कर आये है। अथवा जिसके मिथ्यात्व कर्म का उदय विद्यमान है वह मिथ्यात्वरूप परिणाम का स्वामी है[२९]।

शका - एकेन्द्रिय जीवो से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक के जीवो मे एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है यह कैसे समझा जाय ?

समाधान – आगमप्रमाण इसका साक्षी है कि एकेन्द्रियो से लेकर असज्ञी-पचेन्द्रिय तक के जीवो के मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है। उन जीवो के प्रमुखता से अज्ञानिक मिथ्यात्व होता है[३०]। अथवा उनके नैसर्गिक मिथ्यादर्शन होता है[३१]।

अन्य मार्गणाओं मे भी इसीप्रकार यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

७. मिथ्यात्व का अधिकरण क्या ?

मिथ्यात्व के उदयवाला जीव ही मिथ्यात्व का अधिकरण होता है। मिथ्यात्व के स्वामी के कथन से भी मिथ्यात्व के अधिकरण का ज्ञान हो जाता है।

---

२७ अन घ अ २ श्लोक ६ ७, १०।
शिवपूजादिमात्रेण मुक्तिमभ्युपगच्छताम्। निशङ्क भूतघातोय नियोगः कोपि दुर्विधेः ॥६॥
येन प्रमाणतः क्षिप्ता श्रद्धाना श्रुति रसात्। चरन्ति श्रेयसे हिसा स हिस्यो मोहराक्षसः ॥७॥
तत्वरुचिरतत्वाभिनिवेशस्तत्वसशयः। मिथ्यात्व वा क्वचित्किंचिन्नाश्रेयो जातु तादृशम् ॥१०॥

२८ विषा स्तो १३।

२९ गा ३०६ से लेकर ३०९ तक गो क।

३० हिताहित परीक्षा विरहोऽज्ञानिकम्। स सि पृ २१२।

३१ परोपदेशमन्तरेण मिथ्यात्वकर्मोदयवशात् यदाविर्भवति तत्वार्थाश्रद्धानलक्षण तन्नैसर्गिकम्। रा सि ८–६।

८. मिथ्यात्व के भेद कितने है ?

मिथ्यात्व के दो भेद है –अधिगमज और नैसर्गिक । जो मिथ्यात्व परोपदेशपूर्वक होता है वह अधिगमज मिथ्यात्व कहलाता है[३२] औ" जो मिथ्यात्व, हित क्या है ? और अहितक्या है ? इसकी परीक्षा किये बिना होता है वह नैसर्गिक मिथ्यात्व है । अथवा मिथ्यात्व के पाँच भेद है – एकान्त मिथ्यादर्शन[३३], विपरीत मिथ्यादर्शन[३४], सशय मिथ्यादर्शन[३५], वैनयिक मिथ्यादर्शन[३६] और अज्ञानिक मिथ्यादर्शन[३७] ।

९. मिथ्यात्व का काल

मिथ्यादर्शन का काल सामान्य की अपेक्षा और विशेष की अपेक्षा –इसतरह दो प्रकार से आगम मे बतलाया गया है । सामान्य से विचार करने पर नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है । आशय यह है कि मिथ्यादृष्टिजीवो से यह लोक कभी भी रिक्त नही होता ।

एक जीव की अपेक्षा काल तीन प्रकार से प्राप्त होता है–(१) अनादि-अनत काल (२) अनादि-सान्त काल (३) सादि-सान्त काल । इनमे से सादि-सान्त काल की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्ध-पुद्गलपरावर्तन प्रमाण मिथ्यात्व का काल है ।

छह अनुयोगो के द्वारा यह मिथ्यात्व की मीमासा की है । इसी प्रकार अविरति प्रमाद, कषाय और योग की अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए । अविरति दो प्रकार से होती है –पॉच स्थावरकाय और एक त्रसकाय के जीवो के निमित्त से तथा पॉचो इन्द्रियो और एक मन के निमित्त से– इस प्रकारअविरति के १२ भेद हो जाते है । शुद्धचष्टक और उत्तम क्षमा आदि विषयक भेद से प्रमाद अनेक प्रकार का है । कषाय २५ प्रकार की है तथा योग १५ प्रकार का है[३८] ।

शका –कषायो मे असयम का अन्तर्भाव हो जाता है इसलिये उसको अलग से नहीं कहना चाहिए ?

---

३२ परोपदेशनिमित्त चतुर्विधम्, क्रियाक्रियावाद्यज्ञानिक वैनयिक विकल्पात् ।

३३ तत्रिदमेव इत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्तः ।

३४ पुरुष एवेद सर्वम्-इति वा नित्य एव वा अनित्य एवेति । सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी स्त्री सिध्यतीत्येवमादिविपर्ययः ।

३५ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि किं मोक्षमार्गः स्याद्वानवेत्यन्तपक्षापरिग्रह सशयः।

३६ सर्वदेवाना सर्वसमयाना च समदर्शन वैनयिकम् ।

३७ हिताहितपरीक्षा विरहोऽज्ञानिकत्वम् । स सि पृ २९२

३८ स सि अ ८ सू १ पृ २९२ ।

समाधान –असयम का यद्यपि कषायो मे अन्तर्भाव हो जाता है, फिर भी उसका व्यवहारनय की अपेक्षा अलग से कथन किया गया है, क्योकि यहा जो मिथ्यात्व आदि की प्ररूपणा की गई है वह पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा ही की गई है[३९]। उसी प्रकार प्राणातिपात आदि भावों का भी अन्तर्भाव कर लेना चाहिए।

ये जो मिथ्यात्व आदि ५ कारण कहे गये है वे यहा बन्ध की अपेक्षा ही कहे गये है, इसलिये यहा बन्ध का स्वरूप और उसके भेद विचारणीय हो जाते है।

१०. बन्ध का स्वरूप और उसके कारण

अज्ञान आदि दोषो के कारण यह जीव और पुद्गल के (कार्माणवर्गणाओं का) परस्पर अवगाह लक्षण सम्बन्ध का नाम बन्ध है[४०]। उसके मूल भेद चार है। प्रकृतिबध, स्थितिबध, अनुभागबध और प्रदेशबध। उनमे प्रकृति का नाम स्वभाव है[४१]। जैसे नीमकी क्या प्रकृति है ? ऐसा पूछने पर यह जानने की जिज्ञासा होने पर कहा जाता है कि नीम की प्रकृति कडवापन है। उसी प्रकार ज्ञानावरणादि की प्रकृति अपने-अपने नाम के अनुसार जाननी चाहिए[४२]। जितने काल तक जो कर्म अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता उसका नाम स्थितिबध है[४३]। कर्मों की जो फलदान शक्ति प्राप्त होती है वह अनुभाग बन्ध है[४४]। कर्मरूप से प्राप्त हुए कर्म पुद्गल परमाणुओं का ज्ञानपूर्वक निश्चय करना प्रदेशबन्ध है[४५]।

इस प्रकार कर्मबन्ध के स्वरूप का अवधारण कर कर्मबध के मूलभेद ८ हैं। उत्तरभेद १४८अथवा असख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार अविरति आदि का भी इन अनुयोगो द्वारा विचार कर लेना चाहिए।

पर्यायार्थिकनय से बन्ध के कारण ५ है –मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग[४६]। इन कारणो मे मिथ्यात्व को सर्वप्रथम बन्ध के कारणों मे लिया गया है।

किन्तु अकिचित्कर पुस्तक मे बन्ध के कारणो मे मिथ्यात्वको करण और कर्ताकारक मे नही गिनाया गया है। अकि पु, पृ ६५-६६। इस अपेक्षा से मिथ्यात्व को छोड़कर

---

३९ घ पु ७ पृ १३।

४० जीव पुद्गलयोः परस्परावगाह लक्षण सम्बन्धात्मा बन्धः स प्रा गा ६९-७० की टीका।

४१ स सि अ ८ सू ३।

४२ प्रकृति स्वभावः। निम्बस्य का प्रकृतिः ? तिक्तता

४३ यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणा माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तथा ज्ञानावरणादीनामर्थावगमादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः।

४४ यथा-अजगोमहिष्यादिक्षीराणा तीव्र-मन्दादिभावने रस विशेषः, तथा कर्म पुद्गलाना स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः

४५ कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धाना परमाणुपरिच्छेदेनावधारण प्रदेशबन्धः। स सि अ ८ सू ३।

४६ मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाबन्ध हेतवः। त सू ८–१।

चार ही बन्ध के कारण ठहरते हैं, अतः यहा विचारणीय हो जाता है कि तत्वार्थसूत्र आदि सूत्रकारो ने मिथ्यात्व को किस अपेक्षा से कर्मबन्ध के कारणों मे गिनाया है। आगम-आगम है। उसमे जब मिथ्यात्व को नैगम, सग्रह और व्यवहार आदि सातों नयों से कर्मबन्ध के कारणो मे गिनाया गया है[४७] तो अकिचित्कर पुस्तक मे इस सरणि को क्यों नहीं अपनाया गया है। यह विचारणीय हो जाता है।

वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार के ८वे सूत्र मे राग और द्वेष के साथ "मोह"[४८] शब्द भी आया है। मोह मे क्रोधादि के साथ मिथ्यात्व का भी परिग्रहण हो जाता है। इसलिये यह प्रश्न उठता है कि अकिचित्कर पुस्तक मे मिथ्यात्व को कर्ता और करणरूप से बन्ध के कारणो मे क्यो नही गिनाया गया है ? जबकि समयप्राभृत मे भी आस्रव और बन्ध मे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग का समावेश किया गया है[४९]।

यही स्थिति आचार्य बट्टकेर की भी है। वे भी यह स्वीकार करते है कि उक्त चार, कर्म के आस्रव है[५०]। बन्ध के हेतु कहो चाहे आस्रव कहो, एक ही बात है।

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि तत्वार्थसूत्र मे बन्ध के कारणो मे मिथ्यात्व आदि को लिया है और समयप्राभृत तथा मूलाचार मे इनको आस्रव मे लिया है। ऐसा भेद इन आगमो मे क्यो किया गया है ?

समाधान —यह है कि जो कर्मवर्गणाए ससारी आत्मा मे १३ वे गुणस्थान तक विस्रसोपचय रूप से अवस्थित है वे स्वय अकर्मरूप थीं, किन्तु मिथ्यात्व आदि का निमित्त पाकर उनका ज्ञानावरणादि रूप से परिणमना मिथ्यात्व आदि पॉचो का कार्य है। यह दिखाने के लिए उक्त दोनो आचार्यों ने इन पॉचों को आस्रव मे परिगणित किया है।

दूसरी शका यह हो सकती है कि आचार्य गृद्धपिच्छ ने पुद्गल कर्मबध मे पॉंच कारण गिनाये हैं और उक्त दोनो आचार्यों ने प्रमाद को छोड़कर चार कारण गिनाये है, प्रमाद को छोड दिया है ऐसा भेद क्यों किया गया है ?

समाधान —यह है कि एक तो प्रमाद अनन्तानुबधी आदि चार कषायो मे गर्भित हो जाता है। दूसरे तत्वार्थसूत्र मे गुणास्थानो की अपेक्षा विवेचन करना मुख्य है। तथा उक्त दोनों आगमो मे गुणस्थानो की अपेक्षा विवेचन करने की मुख्यता न होकर सामान्य बन्ध के कारण रूप से आस्रवो के विवेचन करने की मुख्यता रही है, इसलिये उन दोनो आगमों मे प्रमाद का कषायों मे अन्तर्भाव करके चार ही आस्त्रव कहे है।

---

४७ ध पु. १२— वे प्र अ सू. २ तथा ११— णेगम-ववहार-सगहाण णाणावरणीय-वेयणा पाणादिवादपच्चए ॥१२॥ एवसत्तण्ण कम्माण ॥११॥

४८ वे प्र सू. ८ टी —क्रोध—माण—माया—लोभ—हास्य—रत्यरति—शोक—भय—जुगुप्सा—स्त्री—पुनपुसकवेद—मिथ्यात्वाना समूहो मोहः।

४९ स प्रा गा १६४-१६५।

५० मूला चा गा —२३७

११. संसार का मूल कारण मिथ्यात्व विषयक भगवतीआराधना के उद्धरण

ससारमूलहेदु, मिच्छत्त सव्वधा विवज्जेहि ।
वुद्धी गुणणिणाद पि हु, मिच्छत्तं मोहिदम कुणइ ।।२८।।

ससार परिभ्रमण का मूलकारण जो मिथ्यात्व, ताही सर्वप्रकार करि मनवचनकाय करिकै वर्जन करो । गुणनिकरि सहित हू बुद्धी कू मिथ्यात्व जो है, सो मोहित करे है ।

परिहर तं मिच्छत्त, सम्मत्ताणहणाए दढचित्तो ।।२६।।

हे मुने । मिथ्यात्व को त्याग करहू अर सम्यक्तवाराधना मै दृढचित्त होहू ।

मयतण्हियाउ उदय-त्ति मया मणणाति जह सतराहयगा ।
तह य णारा वि असब्भूद सब्भूदति मोहेण ।।७३०।।

इस मिथ्यात्व तै समस्तपदार्थनिकू विपरीत ग्रहण करे है जैसे जल की तृष्णासहित जे मृग कहिये वन का जीव ते मृगतृष्णानिकू जल मानत है तैसै ससारी जीव मोहकरिकै असत्यार्थ हू कू सत्यार्थ माने है ।

मिच्छत्तमोहणादो, धत्तूरयमोहणा वरं होई ।
वद्ढेदि जम्ममरणा, दसणमोहो दु णा दु इदरं ।।३१।।

मिथ्यात्वतै उपज्या जो मोह तातै धत्तूरतै उपज्या मोह अति भला है । जैसे दर्शनमोह का उदय अनतानत जन्ममरण बधावै तैसै धत्तूर नही वधावै, धत्तूरा खाया हुवा तो अल्पकाल उन्मत्त करे है अर मिथ्यादर्शन अनतानतभवपर्यंत अचेत करिकरि मारे है । तातै जन्ममरण के दुःखनितै भयभीत होय सो मिथ्यादर्शन त्याग करे है । अब इहा कोऊ कहै- मिथ्यात्व का त्याग तो पहले ही करि मुनिव्रत धार्या है, बहुरि मिथ्यात्व के त्याग का उपदेश का कहा प्रयोजन है ? ताका उत्तर कहे हैं–

जीवो अणादिकाल पवत्तमिच्छत्तभाविदो सतो ।
णा रमेज्ज हु सम्मत्ते, एत्थ पयत्त खु कादव्व ।।३२।।

अनादिकाल का प्रवर्त्या जो मिथ्यात्व ताहि अनुभवनरूप कीया सता जीव सम्यक्तव मे नही रमे है, तातै सम्यक्त्व ही मै प्रयत्न करना योग्य है ।

अग्गिविसकिराउसप्पा, दिया य दोस णा त करेजण्हू ।
ज कुणदि महादोस तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ।।३३।।

अग्गिविसकिण्हसप्पा, दिया दु दोस करति एयभवे ।
मिच्छत्त पुण दोस, करेदि भवकोडिकोडीसु ।।३४।।

जीव कै जो तीव्र दोष मिथ्यात्व करे है सो महादोष अग्नि विष कृष्णसर्पादिक नही करे है। अग्नि विष सर्पादिक तो एकभवविषै दोष करे है दुख देय मारे है, अर मिथ्यात्व है सो भवनि की कोटाकोटी वा असख्यातभव, अनतभवपर्यंत दोष करे है, मारे है। विशेष के लिए भावार्थ देखिए।

मिच्छत्तसल्लविद्धा, तिव्वाओ वेदणाउ वेदंति।
विसलित्तकंडविद्धा, जय पुरिसा णिप्पडीकारा ॥३५॥

जैसे विषकरिके लिप्त जो बाण ताकरि वेधे जे पुरूष तिनका इलाज नही, मार्या ही जाय है। तैसे मिथ्यात्वशल्यकरि वेध्या पुरूष हू तीव्र वेदना करि निगोद मे तथा नरकतिर्यंच मे अनतानतकाल अनुभवे है। इलाज निकलने का नही पहुचे है।

अच्छीणि संघसिरिणो, मिच्छत्तणिकाचणोण पडिदाइ।
कालगदो वि य सतो, जादो सो दीहससारे ॥३६॥

जैसे सघ श्री नामा कोई पुरुष का मिथ्यात्व की तीव्रताकरि दोऊ नेत्र आय पडे। अर पाछै अध होय तीव्रवेदना भोगतो मरणकरि अनतससार मे परिभ्रमण करने वालो हुओ। कोऊ कहे–एक मिथ्यात्व हमारे है तोहू मै दुर्धरचारित्र धारण करत हू। सो चारित्र मोकू ससार के दुःखतै निकासनेकू समर्थ है। ऐसा आशका करे है। सो मति करहू ऐसे दिखावे है।

कडुगम्मि अणिव्वलिद-म्भि दुद्धिए कडुगमेव जह खीर।
होदि णिहिद तु णिव्वलि, यम्मि य मधुर सुगध च ॥३७॥
तह मिच्छत्तकडुइदे, जीवे तवणाणाचरणाविरियाणि।
णासति वंतमिच्छत्तम्मिय सकलाणि जायंति ॥३८॥

जैसे अशुद्ध कहिये गिरसहित कडवी तूबी मे धारण कीया दुग्ध कटुक होय है अर गिरी काढि शुद्ध की जो तूबी तामै धारण कीया दुग्ध मधुर रहे है अर सुगध रहे है, तैसे मिथ्यात्वकरिकै कटुक जो जीव, ताविषै ग्रहण कीये जे तप ज्ञान चारित्र वीर्य ते नाशकू प्राप्त होय है, अर जा जीव का मिथ्यात्व नष्ट हो गया ता जीवविषै तप ज्ञान चारित्र वीर्य सफल होय है।

इसके बाद नव गाथा मे सम्यक्त्व की महिमा करते हुए लिखते है कि हे मुने। सर्व सासारिक दुःख का नाश करने वाला जो सम्यग्दर्शन, ताके धारण करनेमे प्रमादी मति होहू-आलसी मति होहू। सम्यग्दर्शन जैसै उज्ज्वल होय दृढ होय तैसे निरतर उद्यम करो। जातै ज्ञान चारित्र, तप वीर्य का सम्यग्दर्शन आधार है।सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य एक हू नही होय है, गा ॥३६॥

१२ ऋजुसूत्रनय से विचार

वेदना खण्ड प्रत्यय अनुयोग द्वार मे ११ सूत्रो द्वारा नैगम, सग्रह और व्यवहार नयों से विचार करने के बाद ऋजुसूत्रनय से विचार करते हुए दो सूत्र आये है –इन

सूत्रो द्वारा तो ज्ञानावरणादि कर्मों का प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योग के निमित्त से होता है[५१] तथा स्थिति बध और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होता है[५२] यह कहा गया है। इन दोनो सूत्रों की टीका मे ऐसा क्यों कहा गया है इसका खुलासा करते हुए इसका कारण योगों की वृद्धि और हानि को[५३], तथा कषायों की वृद्धि और हानि को बतलाया गया है[५४]।

शका –प्रकृति बन्ध, योग के निमित्त से कैसे होता है ?

समाधान –योग के बिना ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और ऐसा नियम है कि जिसके बिना जिसकी उपलब्धि नहीं हो सकती है वह उसका कार्य है और दूसरा (योग) उसका कारण है, इसलिये प्रदेशबन्ध के समान प्रकृतिबध भी योग के निमित्त से सिद्ध हो जाता है।

शका –यदि योग के निमित्त से प्रकृतिबध और प्रदेशबध तथा कषाय के निमित्त से स्थितिबध और अनुभागबध बन जाते हैं तो नैगमनय, सग्रहनय और व्यवहारनयसे विचार करने पर सब के प्रत्ययपना ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बध के व्यवहार कारण प्राणातिपात आदि है यह कैसे बन सकते है ?

समाधान –नहीं, क्योंकि उनके द्वारा ज्ञानावरण आदि कर्मों का बन्ध पाया जाता है, इसलिये प्राणातिपात आदि ज्ञानावरण आदिक कर्मों के कर्म बध के कारण हैं यह सिद्ध हो जाता है[५५]। दूसरे प्राणातिपात आदि का कषाय मे अन्तर्भाव होने पर भी पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से इसका अलग कथन करना असगत नहीं है।

यहाँ यह जो कहा गया है कि कारण से कार्य होता है –यह नहीं कहा जा सकता, सो यह कथन प्रमादपूर्वक होनेवाली हिसा आदि के लिए नहीं कहा गया है। यह वचन सावधानीपूर्वक हिसा आदि नहीं करनेवालों की अपेक्षा कहा गया है। उसकी पुष्टि तो "जो कुम्भकार घड़ा नहीं बना रहा है फिर भी उसे कुम्भकार कहने के समान" इस वचन से हो जाती है।

---

५१ वे प्र अ सू. १२ –उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा जोगपच्चए पयडिपदेसग्ग ॥

५२ घ पु १२–वे प्र अ सू. १३ कसायपच्चए ठिदि अणुभागवेयणा।

५३ घ पु १२– वे प्र अ सू. १२ घ टी, ण च जोगवड्ढि–हाणीयो मोत्तूण अण्णेहिंतो णाणावरणीयपदेसग्गस्स वड्ढिं हाणिं वा पेच्छामो।

५४ घ पु १२–वे प्र अ सू. १३ घ टी णाणावरणीट्ठिदवेयणा अणुभागवेयणा च कसाय पच्चएण होदि कषायवड्ढि हाणीहिंतो ट्ठिदि अणुभागाण वड्ढि हाणिदसणादो।

५५ वट्टमाण पज्जएण उवलक्खिय दव्व भावो णाम ––––––––––वजणपज्जाएण पादिददव्वसु सुदठ असुद्धदव्वट्ठिसु वि अत्थि भावणिक्खेवो, तत्थ वि तिकाल समवादो। ज घ पु. १, पृ २६०।

इसका आशय यह है कि जो परिणाम प्रमादपूर्वक हिंसा आदि कार्यों को कर रहा है वह परिणाम ही यहा ज्ञानावरणादि कर्मबध का कारण है[५६], अन्य नहीं। व्यवहार करना अन्य बात है और परमार्थ को मानकर वस्तु का निर्णय करना अन्य बात है।

१३. पर्यायार्थिक नय की सिद्धि कैसे होती है ? उसका एक प्रकार

योग और कषाय ज्ञानावरणादि कर्मबध के कारण क्यो है ? इसकी सिद्धि करते हुए धवला मे बतलाया है कि प्राणातिपात-मृषावाद, अदत्तादान मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन से ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बधता है, क्योंकि उनके बिना भी अप्रमत्त सयत आदि मे ज्ञानावरण आदि कर्मों का बन्ध उपलब्ध होता है। क्रोध, मान, माया और लोभ से भी ज्ञानावरण आदि कर्मों का बन्ध नहीं उपलब्ध होता, क्योकि कर्मों के उदयवालों के उन कर्मों के उदय से रहित काल मे भी कर्मों का बन्ध उपलब्ध होता है। निदान-आभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, मोष, मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन से भी ज्ञानावरण आदि कर्मों का बन्ध नहीं उपलब्ध होता, क्योकि सूक्ष्मसापराय सयतो के, उनके बिना भी ज्ञानावरणादि कर्मों का बन्ध पाया जाता है। इसलिए ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध योग और कषाय से होता है यह सिद्ध हुआ।

इस पूरे कथन का आशय यह है कि योग और कषाय तो प्रथम गुणस्थान से लेकर १०वे गुणस्थान तक तो नियम से पाये जाते है, इसलिए इनके द्वारा सर्वत्र कर्मबन्ध की उपलब्धि मे कारणता बन जाती है। यहा बन्ध के दूसरे कारणो का निषेध नही किया गया है। वे भी कर्म बन्ध के यथास्थान सब कारण है। मात्र योग और कषाय १०वे गुणस्थान तक नियम से कर्मबन्ध के कारण हैं। यह बतलाना इस प्रकरण का मुख्य आशय है। और इसीलिये स्थूल ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा सर्वत्र १०वे गुणस्थान तक योग और कषाय को कर्मबध का कारण कहा है[५७]। यथास्थान दूसरे भी कारण है। पर मिथ्यात्व के सिवाय वे (अविरति औरप्रमाद) यथास्थान कषाय मे अन्तर्भाव को

---

५६ ध पु. १२--वे प्र अ सू. १३, ध टी जोगा-पयडि-पदेसे--ट्ठिदि-अणुभागे कसायदो कुणदि। जदि एव तो दव्वट्ठियणएसु पुव्विल्लेसु तीसु वि पाणादिवादादीण पच्चयत्त कत्तो जुज्जदे ? ण तेसु सतेसु णाणावरणीयबधुवलभादो। नावश्य कारणाणि कार्यवन्ति भवन्ति, कुम्भमकुर्वत्यपि कुम्भकारे-कुम्भकारव्यवहारोपलम्भात्।

५७ ण णाणादिवाद मुसावादादत्तादाण-मेहुण-परिग्गह-रदिभोयणपच्चे णाणावरणीय बज्झदि, तेण विणा वि अप्पमत्तसजदादिसु बधुवलभादो। ण कोह-माण-माय-लोभेहि बज्झइ कम्मोदिल्लाण तेसिमुदयविरहिदद्धाए तब्बधुवलभादो। ण णिदाणब्भक्खाण-कलह-पेसुण्ण-रइ-अरइ-उवहि-णियदि-माण-माय-मोस-मिच्छणाण 'मिच्छदसणेहि, तेहि विणा वि सुहुमसापराइयसजदेसु तब्बधुवलभादो। यद्यस्मिन् सत्येव भवति नासति तत्तस्य कारणमिति न्यायात्। तम्हा णाणावरणीयवेयणा जोग-कसाएहि चेव होदित्ति सिद्ध ध पु. १२-वे प्र अ सू. १३।

प्राप्त हो जाते है। मिथ्यात्व, कषाय से पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अलग कारण है। पर्यायार्थिक नय से कहीं उसकी कार्य-कारण मे सिद्धि होती है।

ऋजुसूत्रनय का कथन आगम मे दो प्रकार से उपलब्ध होता है— एक शुद्ध ऋजुसूत्रनय से और दूसरा अशुद्ध ऋजुसूत्रनय से। इनमे यहा कौन सा ऋजुसूत्रनय लेना चाहिये। यह एक शका है, क्योंकि शुद्ध ऋजुसूत्रनय मे कार्य-कारण भाव नहीं बन सकता क्योकि कार्य-कारणभाव शुद्ध ऋजुसूत्रनय का विषय न होकर नैगमनय का विषय है। इसलिए यहा अशुद्ध ऋजुसूत्रनय से योग और कषाय को ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध का कारण कहा है[५८]। क्योंकि अशुद्ध ऋजुसूत्रनय मे पर्याय सहित द्रव्य की विवक्षा बन जाती है।

यहा विशेषरूप से यह समझना चाहिए कि इस वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे नैगमादि सात नयों से ज्ञानावरणादि कर्मों के बन्ध के कारणो का विवेचन किया गया है। इसलिये प्रारभ के नैगमादि तीन नयों से विवेचन करते हुए सूत्र ८ मे यह बतलाया गया है कि क्रोध, मान, माया, लोभ राग द्वेष और मोह की अपेक्षा विचार करने पर नैगमादि तीन नयों से इन कर्मों के बन्ध के अन्यकारग क्रोधादिक भी सिद्ध होते है[५६]।

सग्रहनय के विषय मे शका-समाधान करते हुए इस अनुयोगद्वार के सूत्र १० की टीका मे बतलाया है कि सग्रहनय मे उसको प्रधान करने पर समस्त विशेषों का सग्रह होते हुए भी कार्य-कारणभेद बन जाता है[६०]।

१४. कर्मबन्ध के कारणों में मिथ्यात्व को क्यों लिया गया ?

यहा मुख्यरूप से कर्मबध के हेतुओं पर विचार करते हुए मिथ्यात्व को कर्मबध के हेतुओं मे क्यों लिया गया है ? इस विषय पर मुख्य रूप से विचार करना है, क्योकि अकिंचित्कर पुस्तक मे कर्मबध के हेतुओं मे मिथ्यात्व को अधिकरणकारक मे रखकर भी कर्ता और करणकारक की अपेक्षा मिथ्यात्व को बध का हेतु नहीं माना गया है। इसलिये यहा विचार करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि किस अपेक्षा से मिथ्यात्व को कर्ता और करणकारक मे बध का हेतु आगम मे स्वीकार किया गया है और किस अपेक्षा से अधिकरण कारक मे बध का हेतु स्वीकार किया गया है।

---

५८ ध पु १२—वे प्र अ सू १४ ध टी असुद्धपज्जवट्ठिए उजुसुदे अणतसत्तिसजुत्तेगदव्वत्थित्त पडि विरोहाभावादो। वट्टमाणकालविसयुजुसुदवत्थुस्स दवणाभावादो ण तत्थ दव्वमिदि णाणावरणीयवेयणा णत्थि त्ति वुत्ते-ण वट्टमाणकालस्स वजणपज्जाए पडुच्च अवट्ठियस्स सगासेसावयवाण गदस्स दव्वत्त पडि विरोहभावादो।

५६ ज ध. भा. १, पृ २५१—णेगम-सग्रह-ववहारा सव्वे इच्छति।

६० सगहम्मि पहाणीकयम्मि सगहियासेसविसेसम्हि कज्ज कारणभेदुववत्तीदो। ध पु. १२—वे प्र अ सू. १० टी।

यह एक मौलिक शका है। इस पर विचार कर लिया जाय तो अकिंचित्कर पुस्तक मे जो कथन अपने अभिप्राय की पुष्टि के लिए किया गया है उसकी नींव के धँस जाने से अकिचित्कर पुस्तक का महल ही ढह जायगा।

वहाँ "यह कषाय मिथ्यादर्शन रूपी फलों को उत्पन्न करती है"। (अकि पु पृ १६) इस कथन से मालूम पड़ता है कि अकिं पुस्तक में कषाय को ही महत्व दिया गया है।

अकि पुस्तक के अ त मे लिखा है कि "हमारा उद्देश्य मूल सुधार व अनाग्रह भाव है", किन्तु अकिंचित्कर पुस्तक मे मूल को कायम रखकर आग्रहपूर्ण ही कथन दृष्टिगोचर होता है। इसलिये इसे गौणकर मुख्य विषय पर विचार करना ही प्रकृत मे इष्ट लगता है, क्योकि प्रकृत विषय का समाधान होने पर अकिंचित्कर पुस्तक द्वारा किया गया महल स्वय ही गिर जायगा ऐसा मैं मानता हू।

१५. कर्मबंध के हेतुओं में कर्ता का विचार :-

मिथ्यात्व कर्म बध का कर्ता है या नहीं यह सर्वप्रथम विचारणीय है। आगम मे कहा गया है कि मिथ्यादृष्टिजीव यदि मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों को एक समय में और नाना समय मे बाधे तो मिथ्यात्व के कारण ही बाधता है क्योंकि मिथ्यात्व के साथ उन प्रकृतियो के बध का अन्वयव्यतिरेक देखा जाता है[६१]।

यहा सवाल उठता है कि खुद्दाबध तो कहता है कि इन मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों के बध का कारण मिथ्यात्व का उदय नियामक है। अन्य प्रकृतियों का बध हो तो उनके बध मे मिथ्यात्व का उदय निमित्त होकर भी नियामक नहीं है। वहा मूल ग्रन्थ मे इसी बात को ध्यान मे रखकर यह वचन उपलब्ध होता है सोलसगह पयडीण बधस्य मिच्छत्तुदओ कारण—यह उद्धरण टिप्पण मे दिया ही है।

शका इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार के सूत्रो मे तो यह स्वीकार किया है कि ऋजुसूत्रनय से तो चारों प्रकार के बधों का कारण योग और कषायों को ही कहा है[६२]। फिर आप मिथ्यात्व को गौण करके योग और कषाय को बध के प्रकरण मे मुख्यता क्यों नहीं देते ?

समाधान यहा मुख्यता और गौणता का प्रश्न नहीं है। यहा तो यह देखना है कि मिथ्यात्व—गुणस्थान में अनन्तानुबधी का उदय न रहे तब भी मिथ्यात्व का बध

---

६१ तत्थ मिच्छत्त—णवुसयवेद—णिरयगइ—एइदिय—बीइदिय—तीदिय—चदुरिंदिय—जादि—हुडसठाण—असपत्तसेवट्टसरीरसघडण— णिरयगइपाओग्गा— णुपुव्वी— आदाव— थावर— सुहुम अपज्जत्त—साहारणाण सोलसण्ह पयडीण बधस्स मिच्छत्तुदओ कारणं। ध पु. ७, पृ १०। गो क गा ९५।

६२ उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा जोगपच्चए पयडिपदेसग्गं ॥१२॥
कसायपच्चए ट्ठिदि—अनुभागवेयणा ॥१३॥ ध पु. १२—वे प्र अ सूत्र १२-१३। पृ २८१ पर गो क गा २५७—जोग पयडि—पदेसे—ट्ठिदि—अणुभागे कसायदो कुणदि।

होता है या नहीं ? षटखण्डागम तो कहता है कि जिसने अनन्ताबधी की विसयोजना की है वह जीव सयोजना के काल मे यदि सीधा मिथ्यात्व मे आवे तो उसके मिथ्यात्व के निमित्त से अनन्तानुबधी का बध होने पर भी बधावलि काल तक उदय नहीं होता[६३]। यहा मिथ्यात्व गुणस्थान मे जघन्य से कितने प्रत्यय होते हैं ? जघन्य से दस प्रत्यय होते है[६४] । खुलासा इस प्रकार है –

पॉच प्रकार के मिथ्यात्व के भेदो मे से एक, किसी भी एक इन्द्रिय से जघन्य से छह काय के जीवो मे से एक काय के जीव की विराधना करता है, इसलिए दो प्रत्यय, इसप्रकार से ये असयम के दो प्रत्यय हुए, अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना करके मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर बधावलि मात्र कालतक अनन्तानुबधी का उदय न होने से चार कषाय का उदय न होने से ये बारह कषायो मे तीन कषाय प्रत्यय, तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय रति अरति हास्य-शोक इन दो युगलो मे से एक युगल, दस योगो मे से एक योग कुल १+२+३+१+२+१ = १० प्रत्यय । इस प्रकार ये सब मिलकर मिथ्यात्व गुणस्थान मे एक समय मे बध कराने वाले दस प्रत्यय होते है ।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित पचसग्रह के सप्ततिका प्रकरण गाथा ३९ मे लिखा है कि मोहनीय की २२ प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के एक समय मे सम्भवतः सभी प्रकृतियो का उदय हो तो १० प्रकृतियो का उदयस्थान होगा । यदि अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना हो जाने से सयोजना के काल मे अनन्तानुबधी चतुष्क का उदय न हो तो नवप्रकृतिक उदयस्थान होगा[६५] ।

प्राचीन पचसग्रह से भी इसी बात का समर्थन होता है[६६] । मिच्छादिट्ठिस्सोदयमगा अट्ठेव होति जिणमणिया (वही गा ३२९) । इसी बात का समर्थन जयधवला के अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना २१ प्रकृतिक प्रवेशकभाव से अवस्थित उपशम सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व, वेदक सम्यकत्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सासादन सम्यक्त्व इनमे से एक गुणस्थान को प्राप्त होने के प्रथम समय मे प्रकृत स्थान के सम्भव होने का

---

६३ गो क गा ४७८—अणसजोजिदसम्मे मिच्छ पत्ते ण आवलित्ति अण ।

६४ घ पु ८ पृ २४-२५—मिच्छाइट्ठिसु जहण्णेण दस पच्चया । पचसु मिच्छेत्तेसु एक्को, एक्केण इदिएण एक्क काय, जहण्णेण विरोहेदि (त्ति) दोण्णि असजमपच्चया । अणताणुबधिचउक्क विसजोजिय मिच्छत्त गयस्स आवलियमेत्तकालमणताणुबधिचउक्कस्सु— दयाभावादो बारससु कसाएसु तिण्णि कसायपच्चया । तिसु वेदेसु एक्को । हस्स—रदि—अरदि—सोगोदोसु जुगलेसु एक्कदर जुगल जोगेसु एक्को जोगो । एवमेदे सव्वे वि जहण्णेण दस पच्चया (१०) ।

६५ प्रा पञ्चसग्रह, गा ३९ टी पृ ३२५ द्वाविंशतिकबन्धके मिथ्यादृष्टौ उत्कृष्टतो दशमोह प्रकृत्युदयाः १० । द्वाविंशतिकबन्धके अनन्तानुबन्ध्युदयरहिते मिथ्यादृष्टौ २२ । नवप्रकृत्युदयाः ।

६६ आवलियमित्तकाल मिच्छत्त दसणाहिसपत्तो । मोहम्मि य अणहीणो पढमे पुण णवोदओ होज्ज ॥ टीका—अनन्तानुबन्धि—विसयोजितवेदक सम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थान प्राप्ते आवलिमात्रकाल अनन्तानुबन्ध्युदयो नास्ति, अतो मोहप्रकृतीना दशकानामुदयः १० अनन्तानुबन्धिरहितो नवप्रकृतीनामुदयो ? मिथ्यादृष्टौ प्रथमे गुणस्थाने भवेत्, गाथा ३०५ ।

नियम देखा जाता है[६७]। इस प्रकार हम देखते है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियो के बध के लिए मिथ्यात्वभाव कर्ता और करणरूप कारक बन जाता है। मिथ्यादृष्टि जीव १६ प्रकृतियों को मुख्य रूप से बाधता है इसलिए तो कर्ता कारक है और निमित्त होने मे करण कारक है।

सर्वार्थसिद्धी अध्याय१०सूत्र२ की टीका मे "मिथ्यादर्शनादिक हेतुओं" का अभाव होने से नूतन कर्मों का अभाव होता है और पहले कही गयी निर्जरारूप हेतु के मिलने पर अर्जित कर्मों का नाश होता है।इन दोनो से "**बध हेत्वभाव निर्जराभ्याम्**" यह हेतु-परकविभक्ति का निर्देश है,

अकिंचित्कर पुस्तक मे यह कहा गया है कि "कषाय की अधिकता मे सक्लेश परिणामो की उत्कृष्टता होती है, अतः वह ही तीव्र मिथ्यात्व के बध का कारण है"। परन्तु ऐसा कहने वाला जीव यह भूल जाता है कि कषाय के तीव्र उदय मे सक्लेश परिणाम किसके होता है ? मिथ्यात्व के मन्द उदयवाले के या धर्म और पचपरमेष्ठी की आसादना करने वाले मिथ्यादृष्टि के[६८] ? जबकि अनतानुबधी के तीव्र अनुभाग से मिथ्यात्व का तीव्र अनुभाग अनतगुणा होता है[६९]। इस प्रकार —उक्त प्रमाणो से यह सिद्ध हो जाता है कि जिसके मिथ्यात्व के उत्कृष्ट अनुभाग की उदय-उदीरणा होगी उसी के उत्कृष्ट सक्लेश परिणाम होगे अन्य के नहीं। यहा मिथ्यात्व गुणस्थान इसीलिये स्वीकार किया है।

जैसे प्रवचनसार की १६वी गाथा मे स्वयभू पद की व्याख्या करते हुए तत्वप्रदीपिका टीकामे निश्चय नय से छह कारक घटित किये गये है, उसी प्रकार कर्मबध के प्रकरण मे भी असदभूत व्यवहारनय से कर्ता आदि छह कारक घटित कर लेना चाहिये। उसमे कोई बाधा नही आती। जैसे यह आत्मा मिथ्यात्व परिणाम करने मे स्वतत्र होने से मिथ्यात्व कर्म के बध करने मे समर्थ है, इसलिये यह मिथ्यादृष्टि आत्मा कर्मबध का कर्ता है। इसी प्रकार कर्म, करण सम्प्रदान, अपादान, और अधिकरण भी मिथ्यादृष्टि आत्मा ही है यह घटित कर लेना चाहिए।

१६ द्रव्यकर्मबंध मे मिथ्यात्व करण और अधिकरणकारक भी है

यहा तक मिथ्यात्व, कर्मबध का कर्ता कैसे है ? इसका आगम प्रमाणो के साथ ही सक्षिप्त रूप से निर्णय किया। अब मिथ्यात्व करणकारक से तथा अधिकरणकारक से किस प्रकार बध का हेतु है ? इस पर अलग से विचार करना है।

---

६७ अणाताणुबधिणो विसजोइय इगिवीसपवेसयभावेणावट्ठिदस्स उवसमसम्माइट्ठिस्स मिच्छत्त-वेदयसम्मत- सम्मामिच्छत्त- सासणासम्मत्ताणमण्णादरगुणापडिवत्तिपढमसमए पयदट्ठाणसमवणियमदसणादो। ज घ पु १० पृ ११६-११७

६८ बादाल तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कऽस्स तिव्वाओ।
वासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कऽसकिलिट्ठस्स ॥१६४॥ गो क का

६९ सव्वतिव्वणुमाग मिच्छत्त। अणताणुबधीलोमो अणतगुणहीणो। माया विसेस- हीणा। कोघो, विसेसहीणो। माणो विसेसहीणो। घ पु १२-वे प्र अ पृ ६०।

षट्खण्डागम वेदना खण्ड के अन्तर्गत प्रत्यय अनुयोगद्वार के मूल सूत्रों मे सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इसलिये यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यहाँ निमित्त परक कथन होने से करण कारक को ध्यान मे रखकर सूत्ररचना होना चाहिए थी अधिकरणकारक मे सूत्र रचना कैसे की गई ? यह एक शका है। उसके उत्तर मे कहा गया कि अधिकरण कारक मे सूत्र रचना होने मे भी कोई आपत्ति नही है, क्योंकि यहा प्राणातिपात (आदि) प्रत्ययो के विषय मे ज्ञानावरण (आदि) कर्मों का बध होता है। यहा विषयार्थक सप्तमी विभक्ति ली गई है।

अधिकरणकारक मे यह विभक्ति तो बन ही जाती है। साथ मे ही उसका करणकारक अर्थ कर्ता, कर्म करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारक विवक्षा भेद से घटित हो जाता है। इसलिये यदि शकाकार को अधिकरणकारक का अर्थ करणकारक रूप अर्थ इष्ट है तो करणकारक रूप अर्थ करना भी बन जाता है। जैसे प्राणातिपात प्रत्यय से ज्ञानावारणादि आठो कर्मों का बध होता है। इस प्रकार सूत्र का अधिकरणकारक और करणकारकरूप अर्थ करना भी सूत्रकार को इष्ट है वह व्यवस्था बन जाती है[७०]।

इसप्रकार हम जानते है कि यहाँ ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतियो का बध असद्भूत व्यवहारनय का विषय है। यहा जो सात नयो की अपेक्षा कथन दृष्टिगोचर होता है वह सब कथन असद्भूत व्यवहारनय मे किस अपेक्षा से क्या कथन किया जायगा उसे ध्यान मे रखकर यह कथन वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार मे किया गया है। इसीलिए ऋजुसूत्रनय के दो भेद करके अशुद्ध ऋजुसूत्रनय को इस कथन मे मुख्यता दी गई है क्योकि अशुद्ध ऋजुसूत्रनय यद्यपि स्थूल पर्याय की मुख्यता से कथन करता है पर पर्यायान्तर से उसका अर्थ द्रव्य रूप भी घटित हो जाता है। इसका समर्थन करते हुए वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार सूत्र १४ की टीका मे शका का समाधान करते हुए यह वचन उपलब्ध होता है कि वर्तमान काल सम्बन्धी व्यजन पर्याय की अपेक्षा जो अवस्थित है और अपने सम्पूर्ण अवयवो को प्राप्त है उसे द्रव्यपना प्राप्त होने मे विरोध का अभाव है[७१]।

---

७० कध पच्चयस्स सत्तमीए उप्पत्ती ? ण पाणादिवादपच्चयविसएणाणावरणीयवेयणा वट्टदि त्ति सबधिज्जमाणेसत्तमीविहत्तीए वइसइयाए उप्पत्तिं पडि विरोहाभावादो। अथवा तइयत्थे सत्तमी दट्ठव्वा। तथा च पाणादिवादपच्चेण णाणावरणीयवेयणा होदि त्ति सिद्धो सुत्तट्ठो। घ पु १२–वे प्र अ सू २ टी मिच्छत्तासजम–कषाय–पमादुट्ठा वियो वयणकलावो। एदम्हि मुसावादपच्च मुसावादपच्चएण वा णाणावरणीयवेयणा जायदे। कम्मबधो हि णाम सुहासुहपरिणामेहिंतो जायदे सुद्धपरिणामेहितो तेसिं दोण्ण पि णिम्मूलक्खओ। वे प्र अ सू ३ टी। एदेहि पच्चेहि णाणावरणीयवेयणा समुप्पज्जदे। घ पु १२–वे प्र अ सू ८ टी। ततस्तत्र तेषा कारणत्व घ पु १२–वे प्र अ सू १३ टी।

७१ घ पु १२–वे प्र अ सू १४ टी –वट्टमाणकालस्स वजणपज्जाए पडुच्च अवट्ठियस्स सगासेसावयवाण गदस्स दव्वत्त पडि विरोहाभावादो।

इस प्रकार स्थूल ऋजुसूत्रनय का कथन भी वर्तमान पर्यायो को अविवक्षित कर अनेक पर्यायों मे अन्वय रूप द्रव्यपने की अपेक्षा नैगमादि नयो के समान द्रव्यार्थिकनय का भी विषय बन जाता है[७२]।

यद्यपि हमने "बध का प्रमुख कारण मिथ्यात्व" इस अपेक्षा से जो लेख लिखा था उसमे भी यही दृष्टि थी। उसमे भी यही बतलाना मुख्य था कि पृथ्वी के समान मिथ्यात्व भी मिथ्यात्व गुणस्थान मे होने वाली अनेक पर्यायों मे होनेवाले बध का निमित्त है। यह भाव-परिवर्तन के समान है। जैसे भावपरिवर्तन मे अनेक योगादि एक स्थितिबध का कारण हैं उसी प्रकार जितनी मिथ्यात्व गुणस्थान मे पर्याये होती है, उनके होने वाले बध मे यह (मिथ्यात्व) हेतु है। इसलिये पर्यायान्तर से स्थूल ऋजुसूत्रनय के विषय को द्रव्यदृष्टि से कथचित् नैगमादि नयों का विषय माना जाय तो कोई आपत्ति नही[७३अ]। वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार का विषय भी यही है और इसीलिए मिथ्यात्व गुणस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त कहा गया है।

सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय मे तो कार्य-कारण भाव घटित ही नही होता क्योंकि उसका विषय एक समय की पर्याय मात्र है[७३ब] इसीलिए कार्य-कारणभाव को दृष्टि मे रखकर उसकी (स्थूल ऋजुसूत्र मात्र की) चर्चा की गई है ऐसा यहा वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार मे समझना चाहिए। अन्यथा जो पर्याय जिस समय होती है वह स्वय होती है यह सिद्धान्त फलित हो जाता है। इसलिए पर्यायार्थिकनय (सूक्षम ऋजुसूत्रनय) से देखा जाय तो कार्य-कारणभाव का निरास हो जाता है, क्योकि कार्य-कारणभाव उसका विषय नही है। वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है या स्थूल ऋजुसूत्रनय का विषय है।

१७. तत्वार्थसूत्र के विवक्षित दो सूत्र-

तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय मे जो प्रथम और द्वितीय क्रमाक वाले दो सूत्र है, वे वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार को ध्यान मे रखकर भी आचार्य ने निर्मित किये है ऐसा उन सूत्रो पर दृष्टि डालने से निश्चित होता है। उनमे से पहला सूत्र नैगम, सग्रह और व्यवहाररूप द्रव्यार्थिक नय के भेदो को ध्यान मे रखकर निर्मित हुआ है। और दूसरा

---

७२ एवमेते नयाः पूर्वपूर्व विरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषया द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्ति विभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते। त एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः-स सि अ १ सू. ३३ टी पृ १०४।
एवमय नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः। स सि अ १, सू. ३३ टी पृ १०२।

७३ अ सव्वदव्वट्ठियणेसु तिण्णि काला सभवति, सुणेसु तदविरोहादो। ज घ भा १, पृ २६१।

७३ ब ज घ भा १, पृ २५३,२५४
वजणपज्जायरुवेण अवट्ठियस्स वत्थुस्स अणेगेसु अत्थ- विंजणापज्जाएसु सचरतस्स दव्वभावुवलभादो। वजणपज्जायविसयस्स उजुसुदस्स बहुकालावट्ठाण होदि त्ति णासं कणिज्जा। ज घ भा १ प २६३-२६४।

सूत्र सूक्ष्म और स्थूल के भेद रूप ऋजुसूत्र नय मे से स्थूल (अशुद्ध) ऋजुसूत्र नय को ध्यान मे रखकर निर्मित हुआ है[७४] । यह दो सूत्रों की रचना का प्रयोजन है ।

१८ नयों की अपेक्षा कार्य-कारण भाव

इसमे सन्देह नहीं कि सातो नयो की अपेक्षा वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार मे कार्य-कारणभाव का विचार किया गया है । उसमे नैगम सग्रह और व्यवहारनय से तो प्राणातिपात आदि मे द्रव्यकर्म बन्धरूप कार्य के प्रति कारणता स्वीकार की गई है, क्योकि नैगमनय मे प्राणातिपात आदि मे कारणता तो इसलिये बन जाती है कि कार्य-कारणभाव आदि उसके विषय है यह नय उपचार को विषय करता है[७५] ।

परमार्थ से देखा जाय तो अन्य द्रव्य के साथ आत्मा का या किसी भी अन्य द्रव्य का कोई सम्बध ही स्वीकार नही किया गया है, क्योकि परमार्थ से पर द्रव्य के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नही बनता । समयसार और उसके कलश-काव्य पर दृष्टि डालने से इसकी पुष्टि होती है[७६] ।

असद्भूत व्यवहारनय को मुख्य कर नैगमनय से देखा जाय तो कार्य-कारणभाव उसका विषय सिद्ध होता है क्योकि जो कथन असद्भूत व्यवहारनय से किया जाता है वह उसका विषय बन जाता है । नैगमनय और व्यवहानय मे ज्ञानावरणीय (आदि) कर्मों के बध के प्रत्यय बन जाओ, पर सग्रहनय मे कैसे बनेगे ? इसका समाधान करते हुए वीरसेन आचार्य लिखते है कि सग्रहनय को प्रधान करने पर समस्त विशेषो का सग्रह होते हुए भी कार्य-कारण भेद बन जाता है[७७] ।

यह तो नैगमादि तीन नयो की अपेक्षा असद्भूत व्यवहारनय से कार्य-कारण भाव कैसे बनता है ? इसका कथन वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे किया गया है । अब ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा ज्ञानावरणादि कर्मों का बध कैसे बनता है ? इसका विचार वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार से सूत्र १२ और १३ मे तथा उनकी धवला टीका मे किया गया है[७८] । इसका विचार करते हुए पर्यायार्थिकनय से एक यह गाथाश भी उद्धृत

---

७४ त सू अ ८ सू १२ ।

७५ यदस्ति न तद द्वयमतिलघ्य वर्तत इति नेकगमो नैगमः । शब्द-शील-कर्म—कार्य—कारणाधाराधेय—सहचार—मान मेयोन्नेय—भूत—भविष्यद्वर्तमानादिकमाश्रित्य स्थितोपचारविषयः । ज ध पु १, पृ २२१ । स प्रा गा ३२१—३२३

७६ नास्ति सर्वोऽपि सबधः परद्रव्यात्मतत्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसबधाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥२००॥ श्लोक स प्रा

७७ होदुणाम णाणावरणीयस्स एदे पच्चया णइगम-ववहारेणेसु, ण सगहणे— तत्थ उवसहारिदासेसकज्जकारणकलावे कारण भेदाणुववत्तीदो १ ण, सगहम्मि पहाणीकयम्मि सगहिदा—सेसविसेसम्हि कज्ज—कारण—भेदुववत्तीदो । ध पु १२—वे प्र अ सू १० टी

७८ वे प्र अ, पृ २८८-२८९ ।

किया गया है –"जोगा पयडि-पदेसे ट्ठिदि-अणुभागे कसायदो कुणदि"। अर्थात् यह कथन नैगमादि तीन नयो का विषय न होकर भी स्थूल ऋजुसूत्रनय का विषय है, क्योकि नैगमादि तीन नय द्रव्य की मुख्यता से कार्य-कारण भाव का विचार करने वाले नय है और स्थूल ऋजुसूत्रनय पर्याय की मुख्यता से विचार करनेवाला नय है । इतना अवश्य है कि सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय मे कार्य-कारण भाव नहीं बनता क्योकि वह (सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय) मात्र एक समयकी पर्याय को ही विषय करता है[७९] । इसीलिये यहाँ व्यजन पर्याय को मुख्य कर इस दूसरे ऋजुसूत्रनय की रचना की गई है, क्योंकि अनेक पर्यायो के समूह को विवक्षित कर किसी तरह पर्यायार्थिकनय होकर भी उसमे द्रव्य की योजना भी घटित हो जाती है । इसको ध्यान मे रखकर इन सूत्रो की रचना की गई है, यह धवला टीका के वचनो से ज्ञात होता है[८०] ।

१६. चार प्रकार के बंध और उनके उभय नयों से कारण का विचार :

यहाँ बध चार प्रकार का है–प्रकृतिबध, स्थितिबध, अनुभागबध और प्रदेशबध । उनमे से द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नैगम, सग्रह और व्यवहार नयो से चारो प्रकार का बध होता है, क्योकि अभ्याख्यान, कलह पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति मान, माया मोष मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और योग इनसे ज्ञानावरणादि कर्मों का बध होता है । इन तीन नयो मे इतनी विशेषता है कि इन नयो मे प्रकृति आदि सर्वथा भेदों की विवक्षा नही की जाती कथचित् भेदाभेद की मुख्यता रहती है तथा ऋजुसूत्रनय मे कथचित् भेदो की विवक्षा मुख्य हो जाती है क्योकि यह नय भेद-प्रधान कथन करता है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि नैगमादि तीन नयो मे भेद किये बिना सामान्य-विशेषात्मक वस्तु ही ग्राह्य होती है, और ऋजुसूत्रनय मे भी भेद की विवक्षा होने पर भी सामान्य-विशेषात्मक वस्तु का ही ग्रहण होता है । मात्र उनमे कथचित् अभेद गौण और कथचित् भेद की मुख्यता रहती है ।

यहाँ अकिचित्कर पुस्तक पृ ४ के टिप्पण १० और ११ के अन्तर्गत जितने प्रमाण उपस्थित किये गये है वे सब ऋजुसूत्रनय को ध्यान मे रखकर ही प्रायः उपस्थित किये गये है, क्योकि करणानुयोग आगम मे कही कथचितभेद के कथन करने की मुख्यता रहती है । और कहीं कथचित अभेद से कथन करने की मुख्यता रहती है

---

७९ स सि अ १, सूत्र ३३ पृ १०४ ।

८० कथ दो चेव पच्चया अट्ठण्ण कम्माण बत्तीसाण पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबधाण कारणत्त पडिवज्जते ? ण असुद्धपज्जवट्ठिए उजुसुदे अणतसत्तिसजुत्तेगदव्व त्थित्त पडि विरोहाभावादो। वट्ठमाणकालविसयउजुसुदवत्थुस्स दव्वणाभावादो । ण तत्थ दव्वमिदि णाणावरणीय णत्थि त्ति वत्तेण, वट्टमाणकालस्य वजणपज्जाए पडुच्च अविट्ठियस्स सगासेसावयवाण गदस्य पडि विरोहाभावादो । ध पु १२–वे प्र अ पृ २८८-२८९ ।

अन्यथा औघप्ररूपणा नही बन सकती। आदेश प्ररूपणा भेद को ध्यान मे रखकर कथन करती है[८१]। अभेद से कथन करना यह किसी अपेक्षा से द्रव्यानुयोग का विषय है, क्योंकि उसमे भेद की विवक्षा गौण हो जाती है[८२]।

इसी कथन को अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए।

यहा तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय का पहला सूत्र कथचित अभेद की मुख्यता से कथन करने वाला है इसलिये वह नैगम, सग्रह और व्यवहारनयों के कथन करने मे व्यापृत रहता है और दूसरा सूत्र ऋजुसूत्रनय से कथन करता है, इसलिये उसमे कषाय और योग की मुख्यता देखी जाती है। इससे मालूम पड़ता है कि तत्वार्थसूत्र की रचनाओं के पूर्व षट्खण्डागम की रचना हो गई थी।

२०. आप्तपरीक्षा का कथन[८३]

सक्षेप मे बध दो प्रकार का है —भावबध और द्रव्यबध। भावबध क्रोधादिस्वरूप है, उसका हेतु मिथ्यादर्शन है, क्योकि मिथ्यादर्शन के होनेपर क्रोधादि की उत्पत्ति बनती है और मिथ्यादर्शन के नहीं होने क्रोधादि की उत्पत्ति नही बनती।

शका —यहा भावबध को मिथ्यादर्शन आदि स्वरूप न कहकर क्रोधादि स्वरूप ही क्यों कहा है ?

समाधान —इनमे कार्य-कारण के भेद की मुख्यता होने से मिथ्यादर्शन को भावबध रूप होने पर उस रूप नहीं कहा है।

शका —तो क्या यह समझा जाये कि मिथ्यादर्शन भावबध रूप भी होता है ?

समाधान —हॉं, मिथ्यादर्शन भावबन्ध स्वरूप तो होता ही है पर उसमे कारणपना दिखाने के अभिप्राय से उसे भावबध मे गौण कर दिया है। अर्थात् उसका भावबध रूप से कथन करने की विवक्षा न रहकर कारण रूप से कथन करने की यहा विद्यानन्द

---

८१ गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य। उवोगो वि य कमसो बीसतु प्ररुपणा भणिदा। सखेवो ओघेत्ति य गुण सण्णा सा च मोहजोगभवः वित्थरादेसोत्तिमगगण सण्णा सकम्मभवा। गो सा जी गा २-३।

८२ ववहारेण दु एदे जीवस्य हवति वण्णमादीया। गुणठाणता भावा ण दुकेई णिच्छयणयस्स ॥५६॥ एएहि य सबधो जहेव खीरोदय मुणोदव्वो। ण य हुति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥५७॥ स प्र गा ५६—५७ तथा नि सा गा ३६—४०—४१—४२—४३—४४—४५—४६—४७—४८—४९—५० पर्यंत।

८३ बन्धो हि सक्षेपतो द्वेधा-भावबन्धो द्रव्यबन्धश्चेति। अथ भावबन्धः क्रोधाद्यात्मकः, बन्धहेतुर्मिथ्यादर्शनम्, तद्भावे भावादभावे चाभावात्। क्वचिदक्रोधादिविषये हि क्रोधादिविषयश्रद्धान मिथ्यादर्शनम्, तस्य विपरीताभिनिवेशलक्षणस्य सकलास्तिवतसिद्धत्वात्। तस्य च सद्भावे बहिरंगस्य सत्यन्तरगे द्रव्यक्रोधादिबन्धे भावबन्धस्य भावबन्ध आ प पृ ४ सद्भावः, सद्भावे चासद्भावः। सिद्धएवेति सम्यग्दर्शन हेतु को—।

आचार्य की विवक्षा रही है। इसी प्रकार आगे प्रत्ययो के विषय मे यह कथन घटित हो जाता है।

इसलिए क्रोधादि रूप परिणामो के होने मे मिथ्यादर्शन परिणाम होना आवश्यक है। इससे हम यह जानते है कि मिथ्यादर्शन परिणाम कारण है और उसका कार्य क्रोधादिस्वरूप है। क्योकि बहिरग कारण मिथ्यात्व के सद्भाव मे और अन्तरग कारण द्रव्य क्रोधादि के सद्माव मे क्रोधादि रूप भावबध होता है, और उसके नहीं होने पर नही होता है। इस प्रकार मिथ्यादर्शन भावबध रूप होकर भी क्रोधादि रूप भावबध का किसी अपेक्षा से कारण है—यह सिद्ध हो जाता है।

जिसको नियमसार की गाथा ५३ मे निमित्त कहा है उसे ही यहा बहिरग निमित्त कहा है, क्योंकि वह आत्मा के कषायभाव से भिन्न है। भले ही वह एक आश्रय मे हुआ हो, पर कषायभाव से मिथ्यात्व भिन्न परिणाम है। कषायभाव क्रोधादि द्रव्यकर्मों के उदय से होता है, इसलिये इसे अन्तरग कारण मे परगणित किया है[८४] क्योकि मिथ्यात्व तो कषाय भाव के होने मे निमित्त मात्र है। वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जब होता है तब नियम से कषायभाव पाया जाता है। एक अपवाद अवश्य है कि जब अनन्तानुबधी चार की विसयोजना करनेवाला जीव मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान मे आता है तब उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबधी चार का उदय नही पाया जाता। कारण का विचार आगे करनेवाले है ही।

यहाँ दो क्रोधादि भाव के होने मे मिथ्यात्व को बहिरग कारण कहा है वह उपचरित असद्भूत व्यवहारनय की विवक्षा मे ही कहा है, क्योकि मिथ्यात्वभाव क्रोधादि भावो से कथचित् भिन्न है। मिथ्यात्व, मिथ्यात्वरूप द्रव्यकर्म के उदय से होता है और क्रोधादि भाव, क्रोधादि रूप द्रव्यकर्म के उदय से होते हैं, इसलिए उन दोनो के अतरगकारण के कारण भी भिन्न है और कार्य भी भिन्न है। मिथ्यात्व भाव होगा तो पर मे राग-द्वेषरूप स्व परिणाम अवश्य होगा, इसलिये क्रोधादि होने मे मिथ्यात्वभाव अविनाभावी निमित्त है। मिथ्यात्व न हो तो पर मे इष्टानिष्ट बुद्धि परमार्थ से नही होती है।

शका —यहाँ यह कहा जा सकता है क्रोधादि भाव दूसरे गुणस्थान से लेकर दसवे गुणस्थान तक होता है किन्तु इन गुणस्थानो मे तो मिथ्यात्व भाव नही पाया जाता, इसलिये क्रोधादि भावो के होने मे मिथ्यात्व को निमित्त क्यों कहा ?

समाधान —यह है कि जो क्रोधादिरूप परिणाम एकत्वबुद्धि को लिए हुए मिथ्यात्व गुणस्थान मे होते है वे अन्यत्र क्यो नहीं होते ? तथा वे कषाय के परिणाम उत्तरोत्तर घटते हुए क्यों होते है ? क्या मिथ्यात्व की तीव्रता मे मिथ्यात्व गुणस्थान मे जो अनन्तानुबधी कषायपरिणाम होता है वह दूसरे गुणस्थान मे सम्भव है ? अर्थात् नही समव है।

---

८४ सम्मत्तस्स णिमित्त जिणसुत्त तस्स जाणया पुरिसा। अतरहेऊ मणिया दसणमोहस्स खयपहुदी ॥ नि सा गा ५३ ॥

शका –*यद्यपि दूसरे गुणस्थान मे* विपरीताभिनिवेश अवश्य देखने को *मिलता* है[८५] पर क्या वह जैसा मिथ्यादृष्टि के होता है वैसा होता है *या* उससे दूसरे प्रकार का होता है ?

समाधान –इस प्रश्न का समाधान करते हुए वही यह भी लिखा है कि मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुए विपरीताभिनिवेश का अभाव होने से उसे मिथ्यादृष्टि सज्ञा नहीं दी है, किन्तु सासादन सज्ञा दी है।

इस शका-समाधान से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अनन्तानुबधी के उदय मे जो विपरीताभिनिवेश होताहै वह मिथ्यात्व के उदय से होनेवाला विपरीताभिनिवेश नही है दूसरे प्रकार का विपरीताभिनिवेश है। उसे स्वीकार करने मे प्रयोजन यह है कि टीका ग्रन्थो मे अनन्तानुबधी को उभयप्रतिबधी स्वीकार किया गया है किन्तु मूल मे उसे चारित्रावरणीय प्रकृतियो मे गिनाया गया है क्योकि वह मुख्यतया चारित्र का ही प्रतिबध करती है। सम्यक्त्व का भी वह प्रतिबध करता है यह कथन इसलिये किया गया है कि उसके उदय होने पर और मिथ्यात्व का उदय न होने पर दूसरा गुणस्थान घटित होता है यह तर्क से निश्चित होता है। प्रथम गुणस्थान तो मिथ्यात्व के निमित्त से होता है क्योकि उसके बिना १६ प्रकृतियो का बघ नहीं होता। मिथ्यात्व के उदय मे होता है इतना तो है ही, पर मिथ्यात्व ही उनके बध का निमित्त है[८६]। अन्यथा मिथ्यात्व की प्रत्ययो मे गणना नही करते। मिथ्यात्व के जो पाँच भेद है उनमे से कोई एक उसका कारण है और १६ प्रकृतियो का बध कार्य है यह जो आगम मे स्वीकार किया है वह साभिप्राय से ही स्वीकार किया है। दूसरी बात यह है कि यदि मिथ्यात्व को प्रत्ययो मे नही गिना जाता है तो अविरति, कषाय और योग को भी प्रत्ययो मे नही गिनना चाहिये[८७]। कर्मबध को व्यवहारनय से भी स्वय मान लेना चाहिए। अतः अविरति, कषाय और प्रमाद को प्रत्ययो मे गिना गया है तो मिथ्यात्व को भी प्रत्ययों मे मानना चाहिए। आगम, आगम है मिथ्यात्व का प्रत्ययो मे निषेध करने से पूरे आगम

---

८५ विपरीताभिनिवेशतोऽसदृष्टित्वात्। तर्हि मिथ्यादृष्टिर्भवत्वय नास्य सासादनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शन चरित्र प्रतिबन्ध्यनन्तानुबन्ध्युदयोत्पादित विपरीताभिनिवेशस्य तत्र सत्वाद्भवति मिथ्यादृष्टिरपि तु मिथ्यात्वकर्मोदय जनित विपरीताभिनिवेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टिव्यपदेशः, किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते। किमति मिथ्यादृष्टिरिति न व्यपदिश्यते चेन्न अनन्तानुबन्धिना द्विस्वभावत्वप्रतिपादनफलत्वात्। न च दर्शनमोहनीस्योदयादुपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा सासादनपरिणामः। प्राणिनामुपजायते येन मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति चोच्येत। यस्मात्य विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो, न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चरित्रावरणत्वात्। तस्योभय प्रतिबन्धकत्वादुभयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न, इष्टत्वात्। सूत्रे तथाऽनुपदेशोऽप्यर्पितनयापेक्षः। ध पु. १, पृ १६४-१६५।

८६ मिच्छत्तस्स सोदएणेव बधो। ध पु. ८ पृ ४४। चदुहि मूलपच्चएहि पचवचासणाणासमय उत्तरपच्चएहि दस-अट्ठारस एगसमय जाहण्णुक्कस्स पच्चएहि य मिच्छाइट्ठी एदाओ पयडी बघइ। ध पु. ८ पृ ४४।

८७ मिच्छत्तासजय-कसाय-जोगा बधकारणाणि। ध पु. ७ पृ ६।

का निषेध हो जाता है। जबकि आगम मे असद्‌भूत व्यवहारनय से मिथ्यात्व अवस्था मे नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट १८ और जघन्य दस प्रत्यय स्वीकार किये हैं। तो आगम को मानने वालो को भी उन्हे स्वीकार करना चाहिये। अकिंचित्कर पुस्तक मे जो अनन्तानुबधी पर जोर दिया गया है उसका आगमनुसार कारण बतलाना चाहिए। वहाँ आगम मे स्पष्ट कहा है कि मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों के बध का मुख्य कारण मिथ्यात्वोदय है[८८]। अनन्तानुबधी आदि २५ प्रकृतियों के बध का मुख्य कारण अनन्तानुबधी चतुष्क का उदय है। अप्रत्याख्यानावरण आदि १० प्रकृतियो के बध का मुख्य कारण (गुणस्थान की अपेक्षा) अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का उदय है[८६]। प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध-मान-माया और लोभ इन ४ प्रकृतियों के बध का कारण इन्ही का उदय ही है[६०]। असाता आदि छह प्रकृतियों के बध का मुख्य कारण प्रमाद ही है। यहाँ प्रमाद का लक्षण करते हुए बतलाया है कि चार सज्वलन कषाय और नव नोकषाय इन तेरह के तीव्र उदय का नाम प्रमाद है[६१]। वहा देवायु के बध का भी कषाय ही कारण है क्योकि प्रमाद के हेतुभूत कषाय के उदय के अभाव से अप्रमत्त होकर मन्द कषाय के उदयरूप से परिणत हुए जीव के देवायु के बध का विनाश पाया जाता है।

उसी को धवला टीका मे इन शब्दों मे व्यक्त किया गया है कि मूल ग्रन्थों[६२] मे अनन्तानुबधी ४ सम्यक्त्व का प्रतिबध करता है यह कैसे नहीं कहा ? उसका समाधान करते हुए धवला टीका मे बतलाया है कि प्रधान नय की अपेक्षा मूल सूत्र ग्रन्थो मे उस प्रकार का उपदेश नहीं किया गया है। इसका अर्थ है कि मूल सूत्र ग्रन्थ तो मात्र अनन्तानुबधी ४ को चारित्र का ही प्रतिबधक कहते है[६३]। दूसरे गुणस्थान मे सम्यक्त्व न होने से टीका ग्रन्थों मे तर्क से यह निश्चित किया गया है कि अनन्तानुबधी चार उभयबन्धी प्रकृति है।

२१. आगम में नयों का कथन

आगम मे सद्‌भूत व्यवहार और असद्‌भूत व्यवहार नयो का कथन दो प्रकार से दृष्टिगोचर होता है, एक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा और दूसरा लौकिक व्यवहार की अपेक्षा। सम्यग्दृष्टि आत्मा के तो भेदविज्ञान की मुख्यता हो जाने से वह आत्मा को ज्ञान दर्शन स्वरूप ही अनुभवता है रागद्वेष व मतिज्ञानादि स्वरूप नही, क्योकि मतिज्ञानादि आत्मा का लक्षण नहीं है। कारण कि, मतिज्ञानादि अरहतों के तेरहवे-चौदहवे गुणस्थान मे

८८. घ पु. पृ १०।
८६ अप्रत्याख्यानावरण वही, पृ ११।
६० घ. पु. ७ पृ ११।
६१ वही पृ ११।
६२. त. सू. अ ८ सू. ६।
६३ कषायवेदनीय षोडशविधम् ।कुत ?
अनन्तानुबन्ध्यदि विकल्पात्। स. सि. अ ८ सू. ६ टी ।

तथा सिद्धों के नहीं पाये जाते है[६४] । इसलिए सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा कथन करते समय रागादिभाव आत्मा के नही है वे पुद्गल के परिणाम होने से ज्ञायकस्वरूप आत्मा से भिन्न है। एक तो यह दृष्टि है और दूसरी लौकिक दृष्टि है। इसके लिये देखिये पचाध्यायी और अनगारघर्मामृत[६५]। यहाँ हमने सम्यग्दृष्टि को विवक्षित कर मिथ्यात्व और क्रोधादि भावो को असद्भूत व्यवहारनय का विषय कहा है । यहाँ बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक की विवक्षा नहीं की गई है, इसलिये इस प्रकार का भेद न करके यह कथन किया गया है ।

२२. मिथ्यात्व, कषाय के होने में निमित्त है :-

यह हम आप्तपरीक्षा[६६] का उद्धरण देकर स्पष्ट कर आये है कि कषाय से मिथ्यात्व का बध नहीं होता, किन्तु कषाय की उत्पत्ति मे मिथ्यात्व अवश्य निमित्त है । देखो, दूसरे गुणस्थान मे अनन्तानुबधी आदि चारों कषायो का बध और उदय दोनों है, पर उस गुणस्थान मे न तो मिथ्यात्व का बध पाया जाता है और न मिथ्यात्व का उदय ही पाया जाता है[६७] । यदि कषायों मे मिथ्यात्व का बध होता तो आगम मे उसे दूसरे गुणस्थान मे क्यो नहीं स्वीकार किया गया ?

(१) इसी प्रकार अनन्तानुबधी की विसयोजना करनेवाला जीव जब प्रथम गुणस्थान मे सीधा आता है तब उसके मिथ्यात्व गुणस्थान मे अनन्तानुबधी का बध तो होता है, पर उसके एक आवलि काल तक उदय नही पाया जाता क्योकि "बधे सकमदि" इस नियम के अनुसार सक्रमित द्रव्य का आबाधाकाल के ऊपर सक्रमण होता है, क्योकि बध को प्राप्त हुई अनन्तानुबधी की आबाधा के ऊपर निषेक रचना होती है । उसका बन्धावलि काल तक उदयावलि मे सक्रमण नहीं हो सकता ऐसा नियम है[६८] ।

---

६४ एऐहि य सबघो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो । ण य हुति तस्स ताणि दु
उवओगागुणाधिगो जम्हा ॥५७॥ तत्थ मवे जीवाण ससारत्थाण होंति
वण्णादी । ससारयमुक्काण णात्थि दु वण्णादो केई ॥६१॥
स प्रा यः प्रीतिरूपो रागः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य, पुद्गलद्रव्यपरिणाम
मयत्वे सत्यनुभूतेर्मिन्नत्वात् । यः यस्तत्वा प्रतिरूपो मोह स सर्वोपि नास्ति
जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्मिन्नत्वात् । आ ख्या पृ १०२ १०३ ।

६५. पञ्च पूर्वार्ध श्लोक ५३४ से लेकर ५५१ तक तथा अन घ अ १ श्लोक १०५ से लेकर १०७ तक ।

६६ देखो टिप्पण न ८६ ।

६७ घ पु ८ सू. १५।१६ तथा सू ७-८ एदेहि पच्चएहि मिच्छाइट्ठी सुतुत्तसोलस पयडीओ बघदि घ पु ८ पृ २२ ।

६८ अणताणुबधिचउक्क विसजोजिय मिच्छत्त गयस्स आवलियमेत्तकालमणताणुबधिचउक्कचक्कस्सुदयाभावादो बारससु कसाएसु तिण्णि कसायपच्चया। घ पु ८ पृ २५ । प्राचीन प च स सप्ततिका गा ३०५। अणताणुबधिणो विसजोइय इगिवीसपवेसय मावेणावट्ठिदस्स उवसमसम्माइट्ठिस्स मिच्छत्त- वेदयसम्मत- सम्मामिच्छत्त- सासणसम्मत्ताणामण्णदरगुणपडि- वत्तिपढमसमे पयदट्ठाणसमवणियमदसणादो । ज घ पु. १०, पृ ११६, पृ १२५ ।

(१) दूसरे गुणस्थान मे बध और उदय साथ-साथ होते हैं उसमे सासादन गुणस्थान का माहात्म्य समझना चाहिए। इस गुणस्थान में वृत्तिकार ने इस नियम को नहीं स्वीकार किया है कि बन्धावलिकाल और सक्रमावलिकाल तक बधे हुए द्रव्य का तथा सक्रमित हुए द्रव्य का आवलिकाल तक उदय और उदीरणा नहीं होती। वृत्तिकार इसे सासादन गुणस्थान का माहात्म्य बतलाते है। जबकि अन्यत्र इस नियम को (एक आवलिकाल की) वे स्वीकारते हैं।

(२) मिथ्यात्व गुणस्थान मे भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबधी चार के बिना तीन कषाय, मिथ्यात्व, एक वेद और दो युगलों में कोई एक युगल की उदय उदीरणा इसलिये होती है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में अनन्तानुबधी चार की आवलि काल तक उदय उदीरणा नहीं पाई जाती।

शका —यहा यह शका हो सकती है कि एक आवलि के बाद अनन्तानुबधी चार मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है, या मात्र उदीरणा ही होती रहती है?

समाधान —शका ठीक है। एक आवलि के बाद अनन्तानुबधी चार मे से किसी एक प्रकृति की उदय और उदीरणा दोनो होते रहते हैं, क्योंकि एक आवलि के बाद उदयावलि के प्रत्येक निषेक मे कर्मद्रव्य पाया जाता है। इसलिये उस द्रव्य का क्रम से उदय होता रहता है और उदयावलि के ऊपर के द्रव्य का अपकर्षणपूर्वक उदय मे निक्षिप्त होना उदीरणा है अतः एक आवलि के बाद उदय और उदीरणा दोनो बन जाते है[९९]।

(३) मिथ्यात्व प्रत्ययक बध उन प्रकृतियो को कहते हैं जिनके बध मे मिथ्यात्व नियम से कारण है[१००], मिथ्यात्व गुणस्थान को छोडकर सासादन आदि गुणस्थानों मे उनका बध नहीं होता। इसी प्रकार अन्य प्रत्ययों के विषय मे भी समझ लेना चाहिए। इतना अवश्य है कि दूसरे गुणस्थान मे मिथ्यात्व का और नरकायु आदि का बध नहीं होता। यदि कषाय ही बध मे मुख्य कारण है, मिथ्यात्व नहीं, तो दूसरे गुणस्थान मे अनन्तानुबधी कषायों का उदय और उदीरणा तो है, पर मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का बध क्यो नहीं होता? क्योंकि अकिंचित्कर पुस्तक मे पृ ६ पर कषाय से ही मिथ्यात्व का बध कहा है।

(४) जयधवला गाथा १०१ मे दर्शनमोहनीय की उपशमना करनेवाले जीवों के मिथ्यात्व प्रथम स्थिति के अन्त समय तक जानना चाहिए तथा यहाँ तक मिथ्यात्व निमित्तक बध कहा है और यह स्वीकार भी किया है[१०१]। क्योंकि यहा तक वह मिथ्यादृष्टि

---

९९ अपक्कपाचणाए विणा जहाकालजणिदो कम्माण टिठदिक्खएण जो विवागो सो कम्मोदयोसिमण्णदो ज ध पु १०, पृ १८७, ण च उदयादो उदीरणा एयतेण पुधमूदाअत्थि, उदयविसेसस्सेव उदीरणाववेसादो ज ध पु १०, पृ १८८। अपक्वपाचननुदीणा।

१०० मिच्छत्तस्स सोदएणेव बंधो आदि ध पु ८, पृ ४४,
मिच्छत्तपच्चओ खलु बधो उवसामगस्स बोद्धव्वां। क, पा गा १०१।

१०१ मिच्छत्त पच्चओ कारण जस्ससो मिच्छत्तपच्चओ खलु परिप्फुड बधो दसण मोहोवसामगस्स जाव पढमट्ठिचरिमसमयो त्ति ताव बोद्धव्वो। केसिं कम्माणं बंधो? मिच्छत्तस्स णाणावरणादिसेस कम्माण च। जइवि एत्थ सेसाणं असजम-कसाय-जोगाणं पच्चयत्तमत्थि तो वि मिच्छत्तस्सेव पहाणभाव-विवक्खाए एवं परूविदमिदि घेत्तव्व। ज ध भा १२ गा १०१ टी पृ ३११।

है, और इसके मिथ्यात्व का तथा मिथ्यात्व के निमित्त से बधने वाले अन्य कर्मों का बध होता रहता है यदि मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय के बध का कर्ताकारक और करणकारक न हो तो दर्शनमोहनीय का बध नहीं होना चाहिए था ?

शका –मिथ्यात्व के निमित्त से किन कर्मों का बध यहा विवक्षित है ?

समाधान .–मिथ्यात्व और ज्ञानावरण आदि शेष कर्मों का बध यहा विवक्षित है।

यद्यपि मिथ्यात्व गुणस्थान मे शेष असयम, कषाय और योग का प्रत्ययपना है तो भी मिथ्यात्व के ही प्रधानपना की विवक्षा मे इस प्रकार कहा है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योकि आगे के गुणस्थानों मे मिथ्यात्व की प्रधानता नही रहती[१०२] ।

(४) जयधवला पु. ४ पृ २४ पर लिखा है कि जिसने अनन्तानुबधी चार को निःसत्व कर दिया है उसके मिथ्यात्व अथवा सासादन गुणस्थान को प्राप्त होने के प्रथम समय मे ही अनन्तानुबधी चतुष्क के स्थिति सत्व की उत्पत्ति बन जाती है।

शका –असद्‌रूप अनन्तानुबधी चतुष्क की मिथ्यात्व मे उत्पत्ति कैसे हो जाती है?

समाधान – नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय से कार्मणवर्गणा स्कन्धों के अनन्तानुबधी चतुष्करूप से परिणमन करने मे कोई विरोध नही आता है।

शका –सासादन गुणस्थान मे उसकी सत्ता रूप से उत्पत्ति कैसे हो जाती है ?

समाधान –सासादन परिणामो से उनकी सत्ता रूप से उत्पत्ति हो जाती है[१०३]।

विशेषार्थ --जयधवला पुस्तक ४ मे' उक्त स्थान पर स्थितिविषयक प्रकरण है क्योकि स्थितिसत्व तभी बनता है जब प्रकृतिसत्त्व, अनुभागसत्व और प्रदेशसत्व ये तीनो हो, और सत्व बन्धपूर्वक बनता है इसलिये ऐसे जीव के चारों प्रकार का बध स्वय स्वीकृत हो जाता है।

(२) यदि सम्यक्त्व के साथ अथवा चारित्र के साथ रहने वाले किसी जीव ने अनन्तानुबधी की विसयोजना कर दी है तो उसके सासादन गुणस्थान को प्राप्त होने पर उसी समय उसका सत्व और उदय बन जाता है और मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर उसके प्रथम समय मे उसका सत्व तो बन जाता है पर एक आवलि काल तक उदय नहीं बनता, इसीलिये इन दोनो गुणस्थानो मे आने के पूर्व तक अनन्तानुबधी चतुष्क की सत्ता नही पायी जाती है, क्योंकि उस जीव ने इन गुणस्थानों मे आने के पूर्व इनकी विसयोजना कर दी है।

---

१०२ परिप्फुड बधो दसणमोहोवसामगस्स जाव पढमट्ठिदिचरिमसमयो त्ति ताव बोद्धव्वो। केसिं कम्माण बधो ? मिच्छत्तस्स णाणावरणादिसेसकमाण च। जइ वि एत्थ सेसाण असजम-कसाय जोगाण पच्चयत्तमत्थि तो वि मिच्छत्तस्सेव पहाणभावविवक्खाए एव परूविदमिदिघेत्तव्व उवरि मिच्छत्त पच्चयस्साभावपदुप्पायणत्तादो। ज ध भा १२ गा १०१ टी पृ ३११।

१०३ कुदो ? अणताणुचउक णिस्सतीकयसम्माइट्ठिणा मिच्छत्ते सासणसम्मत्ते वा पडिवण्णे तस्स पढमसमए चेव अणताणुचउक्कस्स ट्ठिदिसतुप्पत्ती दो। कुदो असतस्स अणताणु चउक्कस्स उप्पत्ती ण, मिच्छत्तोदएण कम्मइयवग्गणक्खधाणमणताणुचउक्कसरूवेण परिणमण पडि विरोहाभावो। सासणे कुदो तेसिं सतुप्पत्ती ? सासणपरिणामादो। ज ध, पु. ४, पृ २४।

(३) यदि वह जीव चौथे आदि से गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थान मे आता है तो उसके बध को प्राप्त होनेवाली सभी प्रकृतियो का बध मिथ्यात्व प्रत्यय की प्रधानता मे होता है, क्योंकि उस गुणस्थान मे असयम, कषाय और योग प्रत्यय तो पाये जाते है, पर उनकी मिथ्यात्व गुणस्थान मे प्रधानता नहीं बनती, इस गुणस्थान मे मिथ्यात्व की ही प्रधानता रहती है ।

२३. वेदना प्रत्यय अनुयोगद्वार के आधार पर विशेष विचार :-

वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे कर्मबध के कारणो का, सातो नयों की अपेक्षा विचार किया गया है । उसमे १३वे सूत्र की धवला टीका मे कतिपय विशेष बातो का निर्देश करते हुए बतलाया है कि अप्रमत्त सयत आदि के जो बध होता है उसमे द्रव्यार्थिक नय से होने वाले रात्रिभोजन तक के भाव कारण नहीं है, क्योकि अप्रमत्त सयत आदि मे उनके बिना भी बध देखा जाता है । क्रोध से लेकर प्रेम तक के भावों से जो कर्मबध होता है वह अप्रमत्त सयत आदि गुणस्थानों मे नहीं बन सकता, क्योकि उनका कर्मोदय नहीं होने पर भी कर्मबध देखा जाता है । निदान से लेकर मिथ्यादर्शन तक के भावों से जो कर्मबध होता है वह उन प्रत्ययो के बिना भी सूक्ष्मसाम्परायिक सयतों मे बन जाता है[१०४] । विशेष खुलासा के लिए ग्रन्थ देखिएगा ।

कार्य-कारण भाव के विषय मे यह नियम है "जो कार्य जिसके होने पर होता है और जिसके नहीं होने पर नहीं होता, वह उसका कारण है । इसलिये ज्ञानावरणीय कर्म, योग और कषाय से होता है यह सिद्ध हुआ । कहा भी है –

यह ससारी जीव प्रकृति और प्रदेश का बध योग के निमित्त से करता है तथा स्थितिबध और अनुभागबंध कषाय के निमित्त से करता है (गो क का गा २५७)

शका –यदि ऐसा है तो पूर्व मे कहे गये तीनो ही द्रव्यार्थिक नयों मे प्राणातिपात आदि को कारणता बतलाना कैसे घटित होगी ?

समाधान –नहीं, क्योंकि उन (प्राणातिपात आदि) के होने पर ज्ञानावरणीय (आदि) कर्मों का बध उपलब्ध होता है, इसलिये उनमे कारणता बन जाती है ।

कारण, कार्यवाले होते ही है ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योकि घडे को नही बनाते हुए भी कुम्भकार मे कुम्भकार का व्यवहार बन जाता है, तथा पर्याय के भेद से वस्तु मे भेद नही होता, क्योंकि वस्तु से भिन्न पर्याय नहीं होती, क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर समस्त लोकव्यवहार के उच्छेद होने का प्रसग प्राप्त होता है । न्याय की चर्चा लोक व्यवहार की प्रसिद्धि के लिए ही की जाती है, क्योंकि लोक-व्यवहार से बहिर्गति न्याय

---

१०४ ध पु १२ पृ २८८-२८९

यदि मानता है तो वह न्यायाभास ही माना जायेगा । इसलिये कर्मबध मे उनकी (प्राणातिपात आदि प्रत्ययों की) नैगमादि नयों से कारणता बन जाती है[१०५] ।

इस पूरे कथन का आशय यह है कि प्राणातिपात आदि भाव रूप कारण हो या द्रव्य रूप कारण हो उनमे हर हालत मे द्रव्यार्थिक तीनो नयों से कारणता घटित हो जाती है, उसमे बाधा नही आती । जैसे कुम्भकार घडा बना रहा है तब भी उसे कुम्भकार ही कहा जायेगा और जब अन्य कार्य कर रहा है तब भी उसे कुम्भकार ही कहा जायेग, क्योंकि कुम्भकार है । उसकी दो अवस्थाए है—एक कुम्भ बनाने की अवस्था और दूसरे कुम्भ नही बनाने की अवस्था । फिर भी वह लोकव्यवहार मे कुम्भकार ही कहलाता है। वैसे ही ससारी जीव जब मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे रहते हुए प्राणातिपात आदि भावरूप कारणो से द्रव्यकर्म बध कर रहा है, तब भी वह द्रव्यार्थिक तीनो न्यो से कर्मबध करनेवाला कहा जायेगा और जब अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थान वाला हो जाता है तब भी वह द्रव्यार्थिक तीनो नयो से कर्मबध करनेवाला कहा जायेगा, क्योंकि ऐसा लोकव्यवहार है । जैसे १२वे गुणस्थान तक यथार्थ से ध्यान है । आगे ध्यान न होते हुए भी १३वे-१४वे गुणस्थान मे ध्यान का उपचार किया जाता है । उसी प्रकार यहा भी जानना चाहिए । यह वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार का अभिप्राय है । इसलिए सर्वत्र सातो नयो से कर्मबध घटित कर लेना चाहिए । यदि कोई एकान्त करत है तो उसकी मिथ्यादृष्टियो मे परिगणना की जाती है ।

शका —यहाँ छठे गुणस्थान तक भाव और द्रव्य दोनो प्रकार से प्राणातिपात आदि प्रत्ययो से द्रव्यकर्मबध होता है, इसलिये उन गुणस्थानो मे पर्यायार्थिक नय अर्थात स्थूल ऋजुसूत्रनय से प्राणातिपात आदि प्रत्ययो से द्रव्यकर्म बध न कहकर योग और कषाय से इस नय की अपेक्षा द्रव्यकर्म बध क्यो कहा ? इसका कारण कुछ तो होना चाहिए ? यह एक शका है ।

समाधान —उसका समाधान करते हुए ११वे और १२वे सूत्रों की धवला टीका मे जो हेतु दिया गया है वह जानने योग्य है । उक्त दोनो सूत्रों की टीका में बतलाया है कि योग[१०६] और कषाय[१०७] की वृद्धि और हानि के साथ जैसी द्रव्यकर्मबध की वृध्दि और हानि देखी जाती है । वैसी प्राणातिपात आदि प्रत्ययो से भी एक ही प्रकार का द्रव्यकर्म उपलब्ध होता हुआ पाया जाता है[१०८] । इसलिये प्राणातिपात आदि प्रत्ययों को स्थूल ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा घटित न कर द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा घटित किया

---

१०५ ध पु १२, पृ २८६ ।

१०६ ण च जोगवड्ढि हाणीयो मोत्तूण अण्णेहिंतो णाणावरणीय पदेसग्गस्स वड्ढि हाणि वा पेच्छामो। ध पु १२—वे प्र अ, सू, १२ टी ।

१०७ कसाय वड्ढि हाणीहिंतो ट्ठिदि-अणुमागाण वड्ढि-हाणि दसणादो । ध पु. १२—वे प्र अ सू १३ टी ।

१०८ यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्ताना विविधरसबीजपुष्पफलाना मदिरा भावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थिताना योगकषायवशात्कर्मभावेन परिणामो वेदितव्या स सि अ ८ सू २ ।

है[१०९] । अथवा जैसे कुम्हार घड़ा बना रहा है तब भी उसे कुम्हार कहा जायेगा और घडे नहीं बना रहा है तब भी उसे कुम्हार कहा जायेगा । उसी प्रकार जब प्राणातिपात आदि प्रत्ययों से द्रव्यकर्मबध हो रहा है तब भी उन प्रत्ययो को द्रव्यकर्मबध करनेवाला कहा जायेगा और जब वे प्रत्यय नहीं है तब भी उन प्रत्ययो से द्रव्यकर्मबध माना जायेगा, क्योकि द्रव्यार्थिकनय का कथन दोनों अवस्थाओं मे घटित हो जाता है ।

(१) यहाँ वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार की और कई बाते जानने योग्य हैं । उसके पहले सूत्र मे तो यह सिद्ध किया है कि जो भी कार्य होता है वह हेतुपूर्वक ही होता है[११०] । (यह व्यवहार है) ।

(२) दूसरे सूत्र मे यह सिद्ध किया है कि प्राणातिपात हिसा विषयक जीव का व्यापार है और वह पर्याय है, इसलिये वह कारण नहीं हो सकती, क्योकि पर्याय को एकान्त से कारणपने का विरोध है ? यह शका है उसका समाधान करते हुए बतलाया है कि द्रव्य को छोडकर पर्याय नहीं पायी जाती, इसलिये उसमे कारणता घटित हो जाती है[१११] ।

विभक्ति विषयक समाधान तो हम पहले ही कर आये है ।

(३) कर्मबध शुभ अशुभ परिणामों से होता है, शुद्ध परिणामो से उन दोनो प्रकार के परिणामो का तथा कर्मबध का निर्मूल रूप से क्षय होता है[११२] ।

(४) क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, रति, शोक भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद और मिथ्यात्व के समूह को मोह कहते हैं । मोह को क्रोधादि मे सम्मिलित नही करने का कारण है कि मोह अवयवी हैं और क्रोधादिभाव अवयव है । इस प्रकार मोह से मिथ्यात्व और क्रोधादि भावों का कथचित् भेद बन जाता है[११३] ।

(५) मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष मोह और प्रेम आदि का अकारण निदान होता है, इसलिये उसे अलग से गिनाया है[११४] ।

(६) मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को मिथ्यात्व मे सम्मिलित कर लिया है ।

---

१०९ मिथ्यादृष्टेः पचापि समुदिता बधहेतवो भवन्ति स सि अ ८ सू १ टीका ।

११० कज्ज पि सव्व सहेउअ चेव णिक्कारणस्स कज्जस्स अणुवलभादो घ पु १२–प्र अ सू १ ।

१११ णाणादिवादो णाम हिंसाविसय जीववावारो । सो च पज्जाओ । तदो ण सो कारण पज्जायस्स एयतस्स कारणत्तविरोहादो त्ति ? ण पज्जायस्स पहाणीभूदस्स आयक्कियपखक्खस्स कारणत्तुवलभादो । घ पु १२–वे प्र अ सू २ टी ।

११२ कम्मबधो हि णाम सुहासुहपरिणामे हिंतो जायदे सुद्धपरिणामेहिंतोतेसिं दोण्ण पि णिम्मूलक्खो । घ पु १२–प्र अ सू ३, टी ।

११३ क्रोध–मान–माया–लोभ–हास्य–रत्यरति–शोक-भय–जुगुप्सा–स्त्री–पु–नपुसकवेद–मिथ्यात्वाना समूहो मोहः । मोहपच्चयो कोहादिसु पविसदि त्ति किण्णावणिज्जदे ? ण, अवयवावयवीण वदिरेगण्णयसरूवाणमेणगेग सखाण कारण-कज्जाण एगाणेग–सहावाणमेगत्तविरोहादो । घ पु. १२–वे प्र अ सू ८ टी

११४ मिच्छत्त– कोह– माण– माया– लोभ– राग– दोस– मोह– पेम्मादिमूलो अणतससारकारणोणिदाणपच्चो त्ति जाणावणट्ठ पुध सुतारमो कदो । घ पु १२–वे प्र अ सू ६ टी ।

(७) क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, प्रेम, निदान अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि निकृति, मान माया और मोष इनको मिलाकर कषायप्रत्यय कहा गया है[११५]।

धवला टीका के इन वचनो से मालूम पड़ता है कि कषाय प्रत्यय से कहीं-कहीं मिथ्यात्व ग्रहण किया गया है तो उससे आगम मे कोई दोष नहीं पैदा होता। जैसे कषाय प्राभृत के अनुसार कषाय की प्ररूपणा मे मिथ्यात्व को भी गर्भित कर लिया है और जैसे प प्रवर टोडरमलजी ने अपने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ मे कषाय कहने से मिथ्यात्व का भी ग्रहण हो जाता है यह स्वीकार किया है। उद्धरण इस प्रकार है –

मोह के उदय से मिथ्यात्व होता है। उन सबका नाम सामान्यतः कषाय है। मो मा प्रका अनुभाग ब. प्र पृ २७ दूसरा अधिकार। दिल्ली से प्राकशित में ३४ पृ पर है।

शब्दनय के तीन भेद है–शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय। पर इन तीन नयो से ज्ञानावरणीय आदि के बध का कारण क्या है ? यह पृच्छा होने पर आचार्य वीरसेन कहते है कि इन शब्दनयों की अपेक्षा यह नहीं कहा जा सकता कि इन कर्मों के बध का कारण क्या है। इसलिये यह कथन अवक्तव्य है[११६]।

इस प्रकार सात नयों मे कौन नय का क्या विषय है इसका विचार किया।

२४. तदनुबन्धिनो का अर्थ :-

अनुबध का अर्थ होता है Agreement। जैसे, मेरा इस बैक के साथ अनुबध है। तत्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि मे कहा गया है[११७] कि अनत ससार का कारण होने से मिथ्यादर्शन अनन्त है। तथा जो कषाय अनत की अनुबधी है अर्थात् बीजाकुर न्याय से प्रवृत्ति कराने मे निमित्त है वह अनन्तानुबधी है, वासनाकाल भी अनन्तानुबधी का अधिक से अधिक अनन्त काल तक बना रह सकता है, अतः वे अनन्तानुबधी क्रोध मान, माया और लोभ है[११८]।

यहाँ मिथ्यादर्शन को अनन्त इसलिए कहा गया है कि वह अनन्त ससार का कारण है। बीजाकुर न्याय से वही स्थिति अनन्तानुबधी की भी है क्योकि उसका वासनाकाल अधिक से अधिक अनन्त काल तक देखा जाता है[११९]।

---

११५. कोध–माण–माया–लोभ–राग दोस–मोह–पेम्म–णिदाण–अब्भक्खाण–कलह–पेसुण्णरदि–अरदि–उवहि–णियदि–माण–माय–मोसेहि कसायपच्चओ परूविदो ॥ ध पु १२–वे प्र अ सू. १० टी।

११६. तेण तिण्ण सद्दणयाण णाणावरणीयवेयणापच्चओ अवत्तव्वो ध पु. १२–वे प्र अ सू. १५ टी।

११७ तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोध मान माया लोभः। स सि अ ८ सू. ९।

११८ अनन्तानुबन्धिनाम्-अनन्त ससारमनुबध्नन्ति बीजाकुरन्यायेन प्रवर्तयन्ति तच्छीलास्तेऽनन्तानुबन्धिनः तेषाम्। अन धर्मा अ २ श्लो ५१ पृ १२५।

११९ अतोमुहुत्त पक्ख छम्मास सखऽसखणतभवं।
सजलणमादियाण वासणकालो दु णियमेण ॥४६। गो क पृ २५।

यहाँ 'तत्' पद से अनन्त का ग्रहण हुआ है, क्योंकि जैसे मिथ्यादर्शन निमित्तपने की अपेक्षा अनन्त ससार का कारण है, अपने वासना काल की अपेक्षा वही स्थिति अनन्तानुबधी की भी है। यह बीजाकुर न्याय से प्रवृत्ति कराने मे निमित्त है। इसी को "वासनाकाल" इन शब्दो मे व्यक्त किया है। जीव के कषाय होने मे अन्तरग कारण कषाय का उदय तो होगा ही, बहिरग कारण मिथ्यात्व रूप परिणाम भी होगा, वह परिणाम भी मिथ्यात्व के उदय होने का फल है। मिथ्यात्व का उदय न हो और अतत्व श्रद्धान हो जाय यह नहीं हो सकता। "तत्कृतः क्रोधादि परिणाम वशीकृतो भावबंधः" तत्वार्थवार्तिक के इस उल्लेख से मालूम पडता है कि क्रोधादि रूप परिणाम को ही अकिचित्कर पुस्तक मे भावबध माना गया है, क्योकि इसमे मोहरूप मिथ्यात्व का उल्लेख नही किया गया है। इससे ऐसा तो मालूम पड़ता है कि, इसके अनुसार अकिचित्कर पुस्तक मिथ्यात्व को भाव प्रत्ययों मे गणना नही करना चाहता। किन्तु आगमो मे मिथ्यात्व की भाव प्रत्ययों मे गणना की गई है।

अकि पु पृ ८ पर उद्धरण है कि –तत्वार्थसूत्र की विभिन्न टीकाओं मे यद्यपि यह कहा गया है कि "**अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तम्**" अनन्त ससार का कारण होने से मिथ्यादर्शन अनन्त कहलाता है और "**तदनुबंधितः क्रोध-मान-माया-लोभः**" इस अनन्त मिथ्यात्व को बाधने वाली कषाय अनन्तानुबधी है"।

यहाँ हम पूछते है कि इस कथन मे अनन्त मिथ्यात्व' रूप अनुवाद कैसे कर लिया, जबकि अनुवाद होता है 'अनन्त'। मिथ्यात्व अनन्त है। अनन्तानुबधी भी वासना काल की अपेक्षा अनन्तससार का कारण होने से अनन्त है।

'तदनुबधिनः' का अकि पुस्तक मे अनन्त मिथ्यात्व को बाधने वाली कषाय अनन्तानुबधी है यह अर्थ किया है जबकि इसका अर्थ होता है कि अनन्त का अनुसरण करने वाली अर्थात् अनन्त की अविनाभाविनी कषाय अनन्तानुबधी है या अनन्त की अनुबधिनी कषाय अनन्तानुबधी है। दोनों पदों का अर्थ ठीक प्रतीत होता है, क्योकि तद्' पद से अनन्त का ग्रहण होता है, न कि मिथ्यात्व का। अनन्तानुबधी का वासना काल भी अधिक से अधिक अनन्त काल तक होता है या बीजाकुर न्याय से उसका अनुबध (Agreement) अनन्त काल तक चला जाता है।

अकि पु. पृ ११ "तदनुबधिनों" पद-----कर्त्तापने का सूचक है।-----यदि कर्मवाच्य या भाववाच्य का प्रयोग होता भी, तो वहा अर्थ "बाधी जाती" होता और ऐसी अवस्था मे पुनः प्रश्न हो जाता 'किसके द्वारा बाधी जाती है' ? तब कहा जाता मिथ्यात्व के द्वारा। लेकिन ऐसा भी सम्भव नहीं क्योंकि प्रथम गुणस्थान में मिथ्यात्व केउदय मे बधने वाली मात्र सोलह प्रकृतियाँ ही हैं। अब यदि अनन्तानुबधी की चार और जुड जायें तो सख्या बढ़कर बीस हो जाएगी जो कि इष्ट नहीं। यदि कदाचित कहो कि मिथ्यात्व के साथ ही उसका बध होता है, तो द्वितीय गुणस्थान में मिथ्यात्व के अभाव मे अनतानुबधी के बध का अभाव हो जायेगा जब कि अनतानुबधी का बध होता है तथा स्वीकार भी है"।

समाधान —यह है कि तदनुबधिनो यह पद कर्तृवाच्य के अर्थ मे कर्त्तापने का सूचक तो है परन्तु कर्मवाच्य मे कर्मपने का भी सूचक हो जाता है। इससे (आगम में) कोई आपत्ति नहीं दिखाई गई है।

यदि कहा जाय कि कर्मवाच्य रूप अर्थ करने पर मिथ्यात्व के उदय मे मिथ्यात्व के द्वारा ही जिन १६ प्रकृतियों का बध होता है उसमे अनन्तानुबधी चार को मिलाने पर २० हो जायेगी तो भी आपत्ति नहीं है क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्व मे उसके द्वारा बधने वाली प्रकृतियो मे १६ के स्थान पर ११७ प्रकृतियाँ है और उसमे अनन्तानुबधी ४ भी सम्मलित हैं, इतनी विशेषता है जिन १६ प्रकृतियाँ के बध मे कारण मिथ्यात्व ही है और मिथ्यात्व गुणस्थान मे जिन ११७ प्रकृतियों का बध होता है उनके बध मे मिथ्यात्व सहित पाँचो ही कारण है[१२०]। फिर भी इतना विशेष जानना चाहिये कि उत्कृष्ट स्थितिबध और अनुभागबध के लिये मिथ्यात्व का उदय होना आवश्यक है। कषाय की अधिकता उसमे तभी कारण हो सकती है जब यह जीव पचपरमेष्ठी की आसादना रूप मिथ्यात्व परिणामो से परिणमे। अन्यथा कषाय की अधिकता बन नहीं सकती। मिथ्यात्वी जीव दूसरे गुणस्थान मे जाता ही नही, क्योंकि दूसरा गुणस्थान गिरते समय ही होता है।

अकि पु पृ ११ पर लिखा है कि "दूसरे" अनुबधिनः पद मे 'अनु' का अर्थ यदि पश्चात् किया जायेगा तब भी अर्थ स्पष्ट व शुद्ध नही होगा। मिथ्यात्व का उदय पहले बाद मे अनन्तानुबधी का बध' तो जो यहा बधकाल मे होने वाला निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध एक समयवर्ती ही होना चाहिए था, वह नाना समयवर्ती हो जायगा। किन्तु वह इष्ट नहीं है। इन सबसे स्पष्ट है कि वहाँ "बाधती है" यह अर्थ ही सगत होगा।

समाधान —"अनु" शब्द का अर्थ पश्चात् किसी भी आचार्यों की टीकाओं मे नहीं लिया है। यहाँ हमे इतना ही कहना है कि उदय और बन्ध एक समयवर्ती-पना बन जाता है। देखो। जिस समय मिथ्यात्व का उदय हो उसी समय नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्व सहिल १६ प्रकृतियाँ का बन्ध या ११७ प्रकृतियों का बध बन जाता है। उक्त कथन से मिथ्यात्व का उदय पहले बाद मे अनन्तानुबधी का बन्ध, अकिंचित्कर पुस्तक का यह कहना भी नही सिद्ध होता। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध एक ही समय मे बन जाता है। दो समय उसके लिये नहीं चाहिये, क्योकि यहाँ पर 'पहले-पश्चात्' का प्रश्न ही खडा नहीं होता

तत्वार्थवृतिकार ने अनुबध्नन्ति, सम्बन्धयन्ति या गोम्मटसार की टीका मे "**अनुबंध्नन्ति, सुघटयन्ति**" कहा है तो इसमे कोई आपत्ति नही है क्योंकि यहाँ पर

---

१२० मिथ्यादृष्टेः पथापि समुदिता बन्धहेतवो भवन्ति। स सि अ ८ १ टी तथा जठारान्याशयात् जठराग्निवशात् मिथ्यादर्शनाद्यावेशात् मिथ्यादर्शनाद्याग्रहात् आर्दीकृतस्य सकषायीकृतस्य। अविभागेन एकाधारेण, श्रीप्रभाचन्द्र विरचित तत्त्वार्थवृत्तिपदम्। ३६३, पृ ४२२ तथा शुभपरिणामनिरूद्धस्वरस-शुभपरिणामनिराकृतफलदान सामर्थ्यम् शुद्धस्वरस ईषत्प्रक्षालितसामर्थ्यम्। पृ ३००, वही।

"बाधती हैं" यह अर्थ तो किया नहीं, इसलिये वाक्य मे "अनुबध्नन्ति" यह क्रिया हो गई, अनन्तानुबन्धी कर्त्ता और मिथ्यात्व कर्म इस तरह कर्तृवाच्य के इस प्रयोग से दर्पणवत् स्पष्ट हुआ कि मिथ्यात्व को बाधने वाली कषाय अनन्तानुबन्धी ही है । अकिं पु पृ १२ ।

इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि मिथ्यात्व को कर्म और अनतानुबधी को कर्ता ठहराने के लिए अकिंचित्कर पुस्तक का यह द्रावडी प्राणायाम है जो विफल हो जाना है । इसीलिए कर्मवाच्य और भाववाच्य को अकिंचित्कर पुस्तक मे नही स्वीकार किया गया । कतृवाच्य को ही स्वीकार किया गया ।

अकिं पु पृ १२मे लिखा है कि "यहा कोई प्रश्न कर सकता है कि अगर मिथ्यात्व को बाधने वाली कषाय अनन्तानुबन्धी है ? जब स्वय अनतानुबधी की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटाकोटि सागर है तब उसके द्वारा मिथ्यात्व मे उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरकी कैसे सभव है ? उसके द्वारा भैया इतना तो निश्चित है कि आगम मे आचार्यों ने स्थितिबन्ध कषाय के द्वारा ही स्वीकार किया है । सभी ने कषाय के द्वारा ही स्थितिबध माना है । मिथ्यात्व के द्वारा भी स्थितिबध होता है ऐसा मुझे एक भी जगह आगम मे देखने मे नहीं आया, यदि मिले तो अवश्य दिखाईयेगा ।"

समाधान —यह है कि न तो अनन्तानुबधी कषाय मिथ्यात्व का बन्ध कराती है और न मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व का बन्ध रोकती है । देखो ! अनन्तानुबधी की विसयोजना करने वाला जीव सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान मे आता है, तब तक एक आवलि तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता फिर भी उस काल मे मिथ्यात्व का बध होता है । इसलिए अनतानुबधी ने मिथ्यात्व का बध कराया यह कथन आगम मे तो कही देखने मे नहीं आया और न ऐसा आगम है ।

स्थितिबन्ध कषाय के द्वारा स्थूल ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा ही स्वीकार किया गया है, पर एक मात्र स्थूल ऋजुसूत्रनय ही तो आगम मे है नहीं, इसके अतिरिक्त सूक्ष्मऋजुसूत्र नय के साथ छह नय और भी हैं । उनसे भी कथन करना था । मात्र स्थूल ऋजुसूत्रनय को आगे करके कथन करना ठीक नहीं प्रतीत होता है । इसलिए ही शास्त्रकारो ने सात नय स्वीकार किये हैं । प्रकृत मे, जिन आचार्यों का अकिचित्कर पुस्तक मे उल्लेख किया गया है उनमे नैगमादि सात नयों के मानने मे कोई मत भेद हो तो उसका उल्लेख प्रकृत मे किया जाना था ।

२५. मिथ्यात्व भी स्थिति और अनुभाग बंध में निमित्त है-

पचास्तिकाय गा १४८ की श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति टीका मे द्रष्टव्य है, वहाँ कहा है —

भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ।। १४८ ।।

भावनिमित्तो बधो भावो निमित्तो भवति । स कः स्थित्यानुभाग बन्धः भावः कथ्यते। भावो रदिरागदोसमोहजुदो । रागादिदोष रहित चैतन्य प्रकाश परिणतेः पृथक्त्वादिकषायादि दर्शनचारित्रमोहनीय त्रीणि । द्वादश भेदात् पृथग्भूतो भावो

रतिरागद्वेषमोह युक्तः । अत्र रति शब्देन हास्याविनाभाविनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या । रागशब्देन तु मायालोभ-रूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानरतिशोकभय जुगुप्सरूपो द्वेषपरिणामो षटप्रकारो भवति । मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति ।

अर्थ –भाव के निमित्त से बध होता है । वह कौन सा बध ? स्थिति-अनुभाग बन्ध भाव को कहते है । भाव अर्थात् रति, राग, द्वेष, मोह युक्त । रागादि दोष से रहित चैतन्य प्रकाश रूप परिणति से पृथक् कषायादि दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय (कषाय-नोकषाय मोहनीय) तीनो हैं। बारह भेदों से पृथकभूत भाव रति, राग, द्वेष, मोह युक्त है । यहाँ रति शब्द से हास्य की अविनाभावी नोकषाय के अन्तर्भूत रति का ग्रहण है और राग शब्द से माया, लोभ रूप राग परिणाम और द्वेष शब्द से क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा रूप छह प्रकार का द्वेष परिणाम होता है । मोह शब्द से दर्शनमोह (मिथ्यात्व) का ग्रहण किया गया है । मूलाचार उत्तरार्ध मे भी स्थिति-अनुभाग बध मे मिथ्यात्व को निमित्त कहा गया है

जोगणिमित्त गहण जोगो मणवयणकायसंभूदो ।
भावणिमित्तो बधो भावो रदिरागदोसमोह जुदो ॥ ९६८ ॥

टीका – कर्मणो ग्रहण योगनिमित्त योगहेतुक, योगः प्रकृतिबध प्रदेशबन्ध च करोतीति । अथ को योग इत्याशकायामाह योगश्च मनोवचनकायेम्य सम्भूतो मनः प्रदेशपरिस्पन्दो वाक्प्रदेशपरिस्पन्दः कायप्रदेशपरिस्पन्दः मनोवाक्कायकर्म योग इति वचनात् । भावनिमित्तो भाव हेतुको बन्ध सश्लेषः स्थित्यानुभागरूपः स्थित्यानुभागौ कषायात् इति वचनात् । अथ को भाव इति प्रश्ने भावोरतिराग द्वेषमोह युक्तो मिथ्यात्वासयमकषाया इत्यर्थ इति ।

गाथार्थ .– कर्मों का ग्रहण योग के कारण होता है । वह योग प्रकृतिबध और प्रदेशबन्ध करता है । वह योग क्या है ? ऐसी आशका होने पर कहते है वह योग मन वचन और काय से उत्पन्न होता है, अर्थात् मन के निमित्त से आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन वचनयोग से आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन और काययोग से आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन होना योग है । मन-वचन-काय के कर्म का नाम योग है । ऐसा सूत्रकार का वचन है। भाव के निमित्त से बध अर्थात् आत्मा के साथ सश्लेष-सम्बन्ध होता है जो स्थिति और अनुभाग रूप है ।

"स्थिति और अनुभाग कषाय से होते है ।" ऐसा वचन है । भाव क्या है ? रति, राग-द्वेष और मोह युक्त परिणाम भाव कहलाते हैं । अर्थात् मिथ्यात्व, असयम और कषायभाव स्थितिबध और अनुभागबध के कारण है । यह मूलाचार उत्तरार्ध ९६८ गा टी सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वसुनन्दी कृत पृ १४६ मे कहा है।

अकिं पु पृ १५ मे कहा है–"प्रथम गुणस्थान मे अनतानुबन्धी अपने तीव्रोदय मे मिथ्यात्व मे सत्तर कोटाकोटि सागर की उत्कृष्ट स्थिति डालने की क्षमता रखती है अन्य कोई सक्षम नहीं । इसकी पुष्टि के लिए मा का और व्यापारी का दृष्टात दिया है ।"

समाधान —मै पूछता हूँ कि अनतानुबन्धी की विसयोजना करने वाला उपशम या वेदकसम्यग्दृष्टि के प्रथम गुणस्थान मे आने पर एक आवली काल पर्यंत अनतानुबन्धी का उदय नहीं होता, तब वहा मिथ्यात्व मे स्थिति अनुभाग बन्ध कौन डालता है ? और वह मिथ्यात्वी प्रथम समय मे ही हीनाधिक बध करता है सो कौन कराता है ?

कितनी ही माताये ऐसी भी तो होती है कि स्वय तो खूब खाती है और सगा पुत्र एव परिवार वाले भूखो मर जाते है, चाहे सारा भोजन जल जाये, सड़जाये, कुत्ते, बिल्ली खा जाये परन्तु परिवार जनो को एक दाना भी नही देती। तथा कितने भी व्यापारी ऐसे भी तो देखने मे आते है कि करोडों रूपये नगद व्यापार मे लगाये लेकिन अत मे दिवालिया हो जाते है। (अरे प्रत्यक्ष की बात बम्बई मे ज्वेलरी बाजार का सबसे बडा ज्वेलर और सबसे बडा पैसे वाला भीख मागते हुए देखा है) इससे अकिचित्कर पुस्तक का ये कथन कि अनतानुबधी का तीव्रोदय मिथ्यात्व मे सत्तर कोटाकोटि सागर की स्थिति बध करने मे सक्षम है खडित हो जाता है। अकिचित्कर पुस्तक को इतने निम्नस्तर पर उतरकर विपरीत दृष्टात देकर सिद्धान्त का अपलाप करना लाछन की बात है तथा आगम मे से यह स्पष्ट बतलाइयेगा कि अनतानुबधी का तीव्रोदय मिथ्यात्व मे सत्तर कोटाकोटि सागर की स्थिति डालती है ? भले ही वह अपने मे चालीस कोटाकोटि सागर की स्थिति क्यो न डालती हो परन्तु मिथ्यात्व मे ७० कोटाकोटि सागर की डालती ही है।

२६. इस सम्बन्ध के दूसरे प्रश्न और उनका समाधान

(१) दर्शनमोहनीय मे चारित्रमोहनीय के भेदरूप अनन्तानुबधी क्रोध मान माया, और लोभ को क्यो सम्मिलित नहीं किया ?

(२) चारित्र मोहनीय की सब प्रकृतियो मे दर्शनमोहनीय का सक्रम क्यो नही होता?

(३) मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध क्यो होता है अन्य गुणस्थानो मे क्यो नहीं होता ?

(४) कषाय के उत्कृष्ट सक्लेश परिणाम से ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबध क्यो होता है ?

(५) कषाय का उत्कृष्ट परिणाम अन्य गुणस्थानो मे क्यो नही होता ? मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही क्यो होता है ?

इस प्रकार ये पॉच प्रश्न हैं जिनके उत्तर से सभव है कि मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिबध मे मिथ्यात्व की कर्ता और करणरूप कारणता सिद्ध हो जाये ?

यहॉ यह बात विशेष रूप से जान लेना चाहिए कि जो समुच्चयरूप कर्मों के उदय-उदीरणा का कार्य है, वह प्रमुखता की अपेक्षा विवक्षा भेद से एक का भी कहा

जाता है, और विवक्षाभेद से अनेक का भी कहा जाता है। जैसे इन्द्रिय सुख का कारण साता वेदनीय की उदय-उदीरणा को कहा जाता है तो क्या सातावेदनीय की मात्र उदय-उदीरणा से इन्द्रिय सुख बन जायेगा, या दूसरे कर्मों के उदय-उदीरणा की इन्द्रिय सुख मे अपेक्षा रहेगी ?

यदि कहा जाये कि, इन्द्रियसुख को प्राप्त होने मे केवल साता वेदनीय की उदय-उदीरणा ही अपेक्षित है अन्य कर्मों की उदय-उदीरणा से इन्द्रिय सुख की प्राप्ति का कोई प्रयोजन नहीं है तो जैसे मिथ्यादृष्टि को इन्द्रिय सुख की अपेक्षा रहती है वैसे चौथे, पॉचवे, छठवे गुणस्थान वालो को क्यों नहीं रहती ?

यदि कहो कि वह सम्यग्दृष्टि और सयमी हो गया है, इसलिये वह मात्र सयम की अपेक्षा शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिए आहार-पानी ग्रहण करता है, इन्द्रिय-सुख के लिये नही। तो इससे मालूम पड़ता है कि इन्द्रियसुख मे मोहनीय कर्म आयुकर्म और नामकर्म की उदय-उदीरणा भी निमित्त है। इसलिये निर्णीत हो जाता है कि इन्द्रिय सुख मे निमित्त सातावेदनीय के समान अन्य कर्म भी निमित्त है। कर्म के कार्यों मे कोई कर्त्ता रूप से निमित्त होते है और कोई करणरूप से निमित्त होते है। जैसे घडे के बनाने मे कुम्हार कर्त्ता रूप से निमित्त है और चक्र आदि करण निमित्त है। वैसे ही मिथ्यात्व भावके होने मे मिथ्यात्व कर्म की उदय-उदीरणा अनुपचरितअसद्भूत व्यवहारनयसेकर्त्तानिमित्त है तथा चारित्रमोहनीय आदिकर्मों की उदय-उदीरणा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कारण आदि निमित्त है।इसप्रकार कर्मों की उदय-उदीरणा के रहते हुए जो कार्य होता है उसमे समुच्चयरूप से अनेक कर्मों की उदय-उदीरणापूर्वक अनेक प्रकार के परिणाम निमित्त होते है।

यद्यपि कर्मशास्त्र मे मुख्यता से भावकर्म के होने मे तथा शरीर और उसके अ गोपाग आदि के होने मे एक कर्म की उदय-उदीरणा निमित्त कही गयी है, पर वह कर्म जब-जब होता है तब-तब उसके होने मे बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक अनेक निमित्त स्वीकार किये गये है।

इस प्रकार प्रकृत मे प्रसग प्राप्त कारण पूर्वक होनेवाले कार्यों का विचार कर इस प्रकरण मे जब जो शकाए उपस्थित कर आये है उनका क्रम से समाधान करते है।

(१) जैसे आठो कर्मों की अकर्मरूप वर्गणाये तथा उनमे से प्रत्येक आयुकर्म की अकर्मवर्गणाये भिन्न-भिन्न जाति की हैं वैसे दर्शनमोहनीय की वर्गणाये भी भिन्न जाति की है और चारित्रमोहनीय की वर्गणाये भी भिन्न जाति की है। इसलिये तो उनका परस्पर सक्रम नही होता, ऐसा वस्तुस्वभाव है।

यतः सूत्रकारो ने अनन्तानुबधी चारको चारित्र मोहनीय मे परिगणित किया है दर्शनमोहनीय मे नही, इसलिये अनन्तानुबधी चार को दर्शनमोहनीय मे सक्रमित नहीं किया[१२१]।

---

१२१ दसण चारित्रमोहणीयपयडीणमण्णो पेक्खिऊण पडिग्गहत्तामावो।
ज घ पु ८ पृ २१॥ दसणमोहणीय चरित्तमोहणीएण सकमइ। चरित्रमोहणीय पि दसणमोहणीए ण सकमइ। कुदो ? भिण्णयजादित्तादो। ज घ पु ८ पृ ३३।

इतना अवश्य है कि अनन्तानुबधी चार का चारित्र मोहनीय के बधनेवाले अन्य भेदो मे सक्रम हो जाता है। क्योंकि ये सब चारित्र मोहनीय की प्रकृतिधा समान जाति की है[१२२], और सक्रमण हमेशा स्वजाति प्रकृतिओं मे ही होता है।

(२) शका —एक के समाधान से ही इस दूसरी शका का समाधान हो जाता है।

(३) मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध क्यो होता है ? इसका कुछ कारण तो होना चाहिए ? कारण के बिना कार्य माना जाय तो उसका स्थितिबध और अनुभाग बन्ध चौदहवे गुणस्थान मे तथा सिद्धो के भी प्राप्त हो जाने का प्रसग आयेगा। जो कि आगम को मान्य नही है। क्योंकि जो सत् होकर कारण के बिना होता है वह नित्य होता है। इसलिए कार्य हो और उसका कारण न हो यह तो नहीं हो सकता[१२३]।

शका —यदि कहा जाये कि मिथ्यात्व के रहते हुए मिथ्यात्व का स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है इसलिये मिथ्यात्व अधिकरण हुआ। मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व के कारण बन्ध हुआ यह कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान —यदि सासादन आदि गुणस्थानो मे भी मिथ्यात्व का उक्त दोनो प्रकार का बन्ध बन जाता तब तो यह कहना भी युक्त होता कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबध और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध कैसे होता है ? परन्तु अन्य गुणस्थानो मे नही होता, इसलिये मिथ्यात्व ही उन दोनो प्रकार के बन्ध का कर्त्ता और करणकारक सिद्ध होता है, केवल अधिकरण कारक ही नही सिद्ध होता। यदि यह भी कहे कि मिथ्यात्व का चारो प्रकार का बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व के कारण ही होता है तो कोई अत्युक्ति नही होगी।

यह हम पहले ही बतला आये है कि, केवल उत्कृष्ट कषाय मात्र मिथ्यात्व के उक्त दोनो प्रकार के बन्ध का कारण नहीं है, किन्तु देव, शास्त्र, गुरू की आसादनारूप मिथ्यात्व भी उनके बध का कारण है[१२४]।

शका —यदि कहा जाये कि क्रमाक टिप्पण १३४ मे तो तीर्थंकर आदि की आसादणा लक्षण मिथ्यात्व के बिना तीव्र कषाय नहीं होती यह कहा गया है। आपने उस पर से सच्चे देव, शास्त्र और गुरू को कैसे फलित कर लिया ?

समाधान —उक्त धवला पुस्तक १०, पृ ४३ मे "तीर्थंकर आदि" पद आया है उससे सच्चे देव, गुरू और शास्त्र का ग्रहण हो जाता है, क्योकि तीर्थंकर पद से सच्चे देव और गुरू का ग्रहण तो हो ही जाता है। उनके वचनरूप से शास्त्र का भी ग्रहण

१२२ अणताणुबधी जतियाओबज्झति चरित्रमोहणीयपयडीओ तासु सव्वासु सकमइ। कुदो ? समाणजाईयत्त पडि भेदाभावादो। ज ध पु ८ पृ ३३।

१२३ सदकारणवच्च नित्यम्। न्यायोक्ति कज्ज वि सव्व सहेउअ चेव णिक्कारणस्सकज्जस्स अणुवलभादो। ध पु १२ वे प्र अ सू १।

१२४ ण च तित्थयदीणमासादणालक्खण मिच्छत्तेण विणातिव्वकसाओ होदि अणुवलभादो। ध पु १० पृ ४३।

हो जाता है, क्योकि उनका उपदेश सुनकर ही यह ससारी जीव मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त होता है[१२५]। इसीलिए यहा पर "तीर्थंकर आदि" पद से सच्चे देव गुरू और शास्त्र का ग्रहण हो जाता है, उसमे कोई बाधा नहीं आती।

(४) कषाय के उत्कृष्ट सक्लेश मे ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इसलिये होता है, क्योकि वह अकेला नही होता, किन्तु वह तीव्र मिथ्यात्व परिणाम तीर्थंकर आदि की आसादना लक्षण परिणाम के साथ होता है, और इसलिये मिथ्यात्व के तीव्र सक्लेश के बिना कषाय का उत्कृष्ट सक्लेश परिणाम नहीं होता, मात्र इसीलिये मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराया है। मिथ्यात्व के उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध के लिये भी इसीप्रकार समझ लेना चाहिये[१२६A]।

(५) इस प्रकार यह नियम है कि कषाय का उत्कृष्ट सक्लेश परिणाम अन्य गुणस्थानो मे इसीलिए नही होता, क्योकि वह मिथ्यात्व के तीव्र परिणाम का अविनाभावी है। मिथ्यात्व के तीव्र परिणाम के बिना कषाय का उत्कृष्ट सक्लेश परिणाम नही हो सकता[१२६B]।

२७. बन्ध में मिथ्यात्व की विशेषता है अनन्तानुबन्धी की नहीं-

तत्वार्थसूत्र आदि मे जो मिथ्यात्व को प्रथम स्थान पर रखा जाता है वह केवल मिथ्यात्व की विशेषता जानकर ही रखा है। अकिंचित्कर पुस्तक मे उसके स्थान मे अनन्तानुबधी की विशेषता बतलाना अयुक्त है, कारण कि प्रथम गुणस्थान मे मिथ्यात्व हो तो वह अनन्तानुबन्धी को बन्ध के सन्मुख करती है और उसका बन्ध भी करता है। (२) देखो दूसरे गुणस्थान मे अनन्तानुबधी चार का बन्ध भी है और अनन्तानुबधी चार मे से किसी एक प्रकृति का उदय भी है, पर अनन्तानुबन्धी का उदय दूसरे गुणस्थान मे होते हुए भी मिथ्यात्व का बन्ध नहीं कराता क्यो नहीं कराता –यदि यह कहो तो यही कहा जायगा कि मिथ्यात्व स्वोदय बन्धी प्रकृति है, इसलिए मिथ्यात्व का बन्ध मिथ्यात्व के उदय से ही होता है अनन्तानुबन्धी चार का उदय उसके बन्ध मे प्रयोजक नही है। किन्तु अनन्तानुबन्धी चार स्वपरोदयी प्रकृति है[१२७]। वह मिथ्यात्व के उदय से भी बधती है और स्वय का उदय होने से भी बधती है[१२८]।

---

१२५ जो जाणदिअरहते दव्वत्तगुणत्त पज्जयत्तेहि। सो जाणदिअप्पाण मोहो खलु जादि तस्स लय। प्रवच गा ८०। सव्वे वियअरहता जेण विधाणेण खविदकम्मसा। किच्चा तधोवदेस णिव्वाद ते णमो तेसिं॥ प्रवच गा ८२।

१२६ बहुसो बहुसो बहुसकिलेस गदो त्ति सुत्तादो चेव द्विदिबधबहुत्तमुक्कड्डणा– बहुत्त च सिद्ध, तदो णिरत्थयमिद सुत्तमिदि ? होदि णिरत्थय जदि कसायमेत्तमुक्कड्डणा ए कारण, किंतु तिव्वमिच्छत्त अरहत–सिद्ध–बहुसुदाइरियच्चासणातिव्वकसाओ च उक्कड्डणाकारण। ध पु १०, पृ ४२।

१२७ ध पु ८ (ब सा वि) सू. ५५-५६।

१२८ ध पु ८ (ब सा वि) सू. ५७-५८।

शका —यदि शकाकार कहे कि मिथ्यात्व स्वोदयी बन्धी प्रकृति अवश्य है पर स्वोदयी का यह अर्थ नहीं है कि स्वोदयी प्रकृति होने से मिथ्यात्व ही उसके बन्ध का कारण है ?

समाधान .—यदि स्वोदयी का अर्थ उक्त नही है तो क्या है ? इसका खुलासा आगमानुसार अकिचित्कर पुस्तक मे देखने को नही मिलता । जो बात कही जाये उसका विवेचन आगम के अनुसार होना चाहिए । आगम मे यह वचन उपलब्ध होता है कि साधुजन आगम चक्षुवाले होते हैं । कहा भी है आगमचक्खू साहू[१२६] ।

(३) मिथ्यात्व के निमित्त से जिन कर्मों का आस्रवपूर्वक बन्ध होता है, उनका शेष गुणस्थानो मे सवर जानना चाहिए । क्योकि मिथ्यात्वरूप कारण के अभाव मे उनका सवर जानना चाहिए[१३०] । वे प्रकृतियाँ १६ है[१३१], मिथ्यात्व, नपुसकवेद २, नरकायु ३, नरकगति ४, एकेन्द्रिय जाति से लेकर चौइन्द्रियजाति तक ५-८, हुडकसस्थान ६, असप्राप्तासृपाटिका सहनन १०, नरकगत्यानुपूर्वी ११, आतप १२, स्थावर १३, सूक्ष्म १४, अपर्याप्त १५, और साधारण १६ ।

(४) नियम यह है कि दूसरे गुणस्थान से गिरकर मिथ्यात्व मे नियम से आता है। ऐसा क्यो होता है ? यह पूछा जाये तो यही कहा जायगा कि वह मिथ्यात्व भूमि के सन्मुख होने का काल है क्योकि जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल मे एक समय से लेकर छह आवलिकाल के शेष रहने पर अनन्तानुबधी चार मे से किसी एक प्रकृति के उदय से जिसका प्रथमोपशम सम्यक्त्व नष्ट हो गया है वह सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है[१३२] । क्योकि अनन्तानुबधी चार की ऐसे जीव के अप्रशस्त उपशम होने के कारण सत्ता है, इसलिये वह उदय मे आ जाती है । कारण कि प्रथम और दूसरा गुणस्थान अनन्तानुबधी के बन्ध और उदय का है तथा उदयावलि मे उसकी सत्ता बनी हुई है, कारण कि उसका अप्रशस्त उपशम हुआ है[१३३] । प्रशस्तउपशम नहीं हुआ है । इसका केवल एक अपवाद है । वह यह है कि जिसने अनन्तानुबधी चारकी विसयोजना की है उसके सीधे मिथ्यात्वगुणस्थान मे आनेपर अनन्तानुबधी चार का बन्ध तो होता है, पर एक आवलि काल तक उदय नहीं होता, क्योकि उसके उदयावलि मे निषेक रचना ही नहीं पायी जाती, कारण कि सक्रमित तथा बन्ध को प्राप्त द्रव्य का एक आवलि काल तक अपकर्षण होकर उदयावलि मे निक्षेप नही होता[१३४] ।

तत्वार्थवार्तिक के ६वे अध्याय के प्रथम सूत्र के वार्तिक १३ के स्पष्टीकरण मे जो यह कहा गया है कि मिथ्यादर्शन अनन्त इसलिये कहलाता है कि वह अनन्त ससार

---

१२६ प्र सा गा २३४ ।

१३० मिथ्यादर्शनादि प्रत्ययकर्म सवरणसवरः । त रा वा पृ ३१६, वा न ६ ।

१३१ त रा वा पृ ३१८, वा न २५ ।

१३२ गो जी गा १९-२० ।

१३३ देसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि-देसकरणोवसामणा त्ति वि अप्पसत्थुवसामणा त्ति वि । क पा चूर्ण सू, पृ ७०८ ।

१३४ अणसजोजिदसम्मो मिच्छ पत्ते ण आवलित्ति अण । गो क गा ४७८ ।

का कारणहै। लगभग वही स्थिति अनन्तानुबधी चार की भी है क्योंकि उसका वासनाकाल अनन्त ससार तक बना रह सकता है। दूसरे गुणस्थानो के बाद नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान होने वाला है, और वह मिथ्यात्व गुणस्थान मिथ्यात्व प्रकृति के उदय का अविनाभावी है। इसी को व्याजोक्ति की अपेक्षा कहा गया है कि जैसे मिथ्यात्व रूपी फल को अनन्तानुबधी ने पैदा कर दिया है या अनन्तानुबधी के मिथ्यात्वरूपी फल को उत्पन्न कर मिथ्यादर्शन मे प्रवेश कराती है। यह व्याजोक्ति है।

दूसरे गुणस्थान के होने की एक सीमा है। उसके बाद नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है ऐसा नियम है, क्योंकि चौथे आदि गुणस्थान से वह मिथ्यात्व को प्राप्त करने के लिए ही वह उक्त स्थान से गिरा है। वह सम्यक्त्व से च्युत असमय में हो गया है यह उसका अपराध है। वैसे उसे असमय मे सम्यक्त्व से च्युत नहीं होना था। इतने कथन से यह निष्कर्ष निकला कि–

(१) यह जीव जिस समय सम्यक्त्व से च्युत हुआ उसी समय मिथ्यात्व के सन्मुख हो गया है।

(२) किन्तु यह जीव असमय मे सम्यक्त्व से च्युत हुआ, इसीलिए उसे उतने काल तक विवश होकर सासादन गुणस्थान मे रुकना पडा, क्योंकि सम्यक्त्व की विराधना करने से ही उसके सासादन गुणस्थान की प्राप्ति हुई है। यह अन्वर्थ सज्ञा है क्योंकि वह सम्यक्त्व की विराधना करने से उत्पन्न हुआ है[१३५]। अन्यथा वह सीधा मिथ्यात्व मे जाता। जो अनन्तानुबधी चार की विसयोजना करता है वह यदि सीधा मिथ्यात्व मे ही जाता है। उसके अनन्तानुबधीचार का न तो मिथ्यात्व के बिना बन्ध होता है और न अनन्तानुबधी चार का एक आवलि काल तक उदय ही होता है। विसयोजना के काल मे ही उदयावलि के ऊपर के निषेको की विसयोजना हो जाती है, और जो निषेक उदयावलि मे रहते है उनका क्रम से विसयोजना के काल मे ही उदय के एक समय पहले स्तिवुक सक्रमण होकर निर्जरा हो जाती है। उनका उदय इसलिये नही होता, क्योकि यह या तो विसयोजना सहित है या चौथा आदि गुणस्थान उसके उदय का नहीं है। उसकी (अनतानुबधी की) उदय-उदीरणा का पहला और दूसरा गुणस्थान है।

यदि कहो कि अनन्तानुबधी चार की विसयोजना करनेवाला भी सासादन गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है तो यह कहना कषाय-पाहुड के अनुसार तो बन जाता है, षट्खण्डागम के अनुसार नहीं बनता। इसलिये यहा अनन्तानुबधी चार की विसयोजना करनेवाले जीव का सासादन गुणस्थान की प्राप्ति का निषेध किया है।

शका –षट्खण्डागमजीवट्ठाण की चूलिका मे यह कहा गया है कि सामान्य मनुष्य सम्यक्त्व से उत्पन्न हुए थे, वे सासादन सम्यक्त्व से कैसे निकलते हैं ?

---

१३५. आसादन विराधन सहसादनेन वर्तत इति सासादना। सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्य सो य सासादनसम्यग्दृष्टिरिति तस्य मिथ्यादर्शनोदयाभावेऽपि अनन्तानुबध्युदयात् त्रीणि ज्ञानानि अज्ञानान्येव भवन्ति अत एवास्यान्वर्थसज्ञा। त रा अ ७, सू. १, वा १३ मे पृ ३१७।

समाधान :-इसका समाधान करते हुए पहले तो टीका मे सिद्धान्त की बात बतला दी, फिर अन्त मे यह कह दिया कि यहा तो सख्यात वर्ष और असख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों को छोड़कर इस सूत्र की रचना हुई है। इसलिये यह घटित हो जाता है। कैसे घटित हो जाता है ? इसका खुलासा धवला मे नहीं किया गया है। इससे मालूम पड़ता है कि वीरसेन स्वामी का मौन रहना इसके समर्थन मे है कि, सख्यात वर्ष की आयु वालों के दूसरी बार सासादन गुणस्थान की प्राप्ति नही बन सकती। मनुष्य सामान्य और उक्त देवों मे बन जायेगी[१३६]। विशेष के लिये जीवट्ठाण चूलिका का उक्त प्रकरण देखना चाहिए।

२८. स्व-परोदयबन्धी प्रकृतियों की परिभाषा :-

"स्वोदय और परोदयबन्धी प्रकृतियो के प्रसंग मे यहा खास-तौर से मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी इन दो प्रकृतियों के ही बारे मे विचार करेगे।" ये अकिचित्कर पुस्तक पृ ४१ के शब्द है।

इसका विचार करते समय इन बातों को ध्यान मे लेना आवश्यक है। अकिचित्कर पुस्तक के शब्दों मे जिनका विचार करना आवश्यक है वे ये है –

(१) अनन्तानुबधी को स्वोदयी तथा परोदयी दोनो रूप कहा गया है तो उसका भी बन्ध मिथ्यात्व के उदय मे तथा मिथ्यात्व के द्वारा स्वीकार कर लेना चाहिए अकि पु. पृ ४१

(२) यहा मिथ्यात्व स्वोदयबन्धी मानने का अर्थ है कि मिथ्यात्व के उदय मे ही मिथ्यात्व का बन्ध होगा। न कि वह मिथ्यात्व के द्वारा होगा। अकिं पु पृ ४२

(३) इससे यह नियम भी नही बनता कि मिथ्यात्व के उदय से नियमतः इन प्रकृतियों का बन्ध ही हो। अकिं पु पृ ४२

(४) मिथ्यात्व के उदय के साथ अनन्तानुबधी का उदय तो हमेशा रहता ही है। अकि पु पृ ४४

ये चार बाते मुख्य है। इनके साथ पूरे प्रकरण पर भी विचार करेगे।

किसी ने पूछा होगा कि महाराज ! मिथ्यात्व प्रकृति तो स्वोदयी बन्धी प्रकृति है, इसलिए मिथ्यात्व के उदय मे मिथ्यात्व के वश मिथ्यात्व का बध मान लिया जाये तो इसमे क्या बाधा है ? यह दूसरे द्वारा किया गया पहला सवाल है। इसका समाधान करते हुए अकिंचित्कर पुस्तक मे पृ. ४२ पर यह उत्तर दिया गया है कि –

यहाँ मिथ्यात्व स्वोदयी बन्धी मानने का अर्थ है कि मिथ्यात्व के उदय मे ही मिथ्यात्व का बन्ध होगा, नकि वह मिथ्यात्व के द्वारा होगा, इत्यादि आगे अप्रासगिक बात लिखकर यह लिखा है कि "इससे यह नियम भी नहीं बनता कि मिथ्यात्व के उदय से नियमतः इन प्रकृतियो का बन्ध हो ही।"

---

१३६ ध पु. ६, जी चू. सू. ६६-७० टी , पृ ४४३-४५।

समाधान —उनमे मिथ्यात्व भी सम्मिलित होकर मुख्य है, क्योंकि मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्व में ही होता है। दूसरे, मिथ्यात्व के एकेन्द्रिय आदि पर्याय और सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय पर्याय की लब्ध्यपर्याप्तक पर्याय मिथ्यात्व मे ही होती है। अन्यथा, अनन्तानुबधी मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं कहना था ? यतः इस मिथ्यात्व के द्वारा भी अनन्तानुबधी का बन्ध कहा गया है, इसलिये भी अनन्तानुबधी के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध मे मिथ्यात्व की उत्कृष्टता सिद्ध हो जाती है।

अकि पु पृ ४४,मे लिखा है कि "परोदयबन्धी होने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि अनतानुबधी क्रोध के उदय मे अनतानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों का बन्ध होता है।"

समाधान —जो अनतानुबधी चार की विसयोजना कर सीधे मिथ्यात्व गुणस्थान मे आया है, उसके एक आवलि काल तक अनतानुबधी का उदय तो नहीं होगा, तो उस अनतानुबधी का बन्ध जघन्य से मिथ्यात्व आदि १० प्रत्ययों से और उत्कृष्ट से १८ प्रत्ययो के द्वारा होता है[१४३]। जब अनन्तानुबधी सयोजित ही नहीं हुई उसका एक भी परमाणु उदयावलि मे ही नहीं है तो फिर अनतानुबधी क्रोध का उदय कैसे आ सकेगा ? ऐसी स्थिति मे अनतानुबधी चतुष्क के बध का प्रश्न ही नहीं रहता। अतः अन्य चार प्रत्यय भी मिथ्यात्व के साथ गौण रूप से उसके बन्ध में प्रयोजक हैं।वेदना प्रत्यय अनुयोग पृ २१४ पर बन्ध, उदय और उपशम रूप को सात नयों से घटित किया गया है, अकिंचित्कर पुस्तक को लिखते समय उसे भी ध्यान में लेना चाहिए।

सासादन गुणस्थान मे भी अनन्तानुबधी का बन्ध होता है, इसलिये सासादन गुणस्थान भी अनन्तानुबधी के लिये मुख्य है। पर यह कहना इसलिये नहीं बनता, क्योंकि सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुबधी का उत्कृष्ट बन्ध नहीं होता, वह मिथ्यात्व मे ही होता है। प्रमाण पहले दे आये हैं। जैसे दूसरे गुणस्थान मे अनन्तानुबधी निमित्त है वैसे ही मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी मिथ्यात्व निमित्त है। क्योंकि सासादन में मिथ्यात्व का बन्ध नहीं होता इसलिये अनन्तानुबधी चार मिथ्यात्व के बन्ध मे निमित्त नहीं हैं, अन्यथा नौवे गुणस्थान मे सज्वलन लोभ का स्थिति और अनुभाग की अपेक्षा जितना बध आगम मे कहा है, उतना बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी होने लगे ? परन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिये जिस-जिस गुणस्थान मे जो-जो प्रत्यय कहे हैं उन्हे स्वीकार कर लेना चाहिए। कोई भी जैनी हो उसे आगम को मुख्यता देनी चाहिए[१४४], क्योंकि

---

१४३ अणताणुबधीचउक्क विसजोजिय मिच्छत्त गयस्स आवलिमेत्तकालमणताणुबधिचउक्कस्सुदयाभावादो बारससु कसाएसु तिण्णि कसायपच्चया— एवमेदेहि दस अट्ठारसजहण्णुक्कस्सपच्चएहि मिच्छाइट्ठी अप्पिदसोलसपयडीओ बधइ ॥ ध पु ८ पृ २५। तथा मिच्छत्तासजम— कसाय— जोग— पच्चयापरिणदजीवेण विणाबधो णत्थि त्ति पच्चयविहाणे परुविदत्तयो। ध पु १२, पृ ३०५।

१४४ सव्वे आगमसिद्ध अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं।
जाणति आगमेण हि पेच्छित्ता ते वि ते समणा ॥२३५॥ प्र सा पृ ४८७।

आगम से ही हम जानते हैं कि जीवादि छह द्रव्य हैं। उनमें पाँच अस्तिकाय है। काल द्रव्य है तो अवश्य ही, पर वह अन्य द्रव्यों के समान कायवान् नहीं है इसलिये आगम ही हमारा चक्षु है[१५५]।

मिथ्यात्व का प्रथम बार उपशम करने के लिये तीन करण किये जाते है। वे तीन करण मिथ्यात्व में ही होते हैं। पर अनन्तानुबंधी का स्वयं अप्रशस्त उपशम हो जाता है और क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये विसंयोजना करता है वही क्षय है। ऐसा नियम है कि जब यह जीव अनन्तानुबधी का पहले क्षय करता है तब मिथ्यात्व का पहले क्षय क्यों नहीं होता, यदि यह पूछा जाये तो उसका उत्तर यही है कि अनन्तानुबधी की अपेक्षा मिथ्यात्व का अनुभाग अत्यन्त अप्रशस्त है, इसलिये अनन्तानुबधी का अपेक्षा मिथ्यात्व का क्षय करने के लिये अधिक आत्मबल लगता है। इसीलिये मात्र अनन्तानुबधी के क्षय के बाद मिथ्यात्व का क्षय आगम मे स्वीकार किया गया है, तथा अनुभाग की अपेक्षा देखा जाये तो अनन्तानुबधी चार का जघन्य अनुभाग भी मिथ्यात्व के जघन्य अनुभाग से बहुत अल्प है, क्योंकि अनन्तानुबधी को जघन्य अनुभाग के बाद मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है।

शका —यहा यह शका होती है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग भी अनन्तानुबधी के अनुभाग से बहुत थोडा है, फिर क्यों मिथ्यात्व के उपशम या क्षय के बाद इनका उपशम या क्षय कराया है ?

समाधान —यह प्रश्न उपयुक्त है किन्तु वे दोनों प्रकृतियाँ मिथ्यात्व के ही भेद है, इसलिये मिथ्यात्व का उपशम या क्षय हुए बिना उनका उपशम या क्षय नहीं होता, क्योंकि वे एक अपेक्षा से मिथ्यात्व की ही पुष्टि करती हैं।

२९. बन्धापसरण का अर्थ :-

यह तो तय है कि बन्धापसरण बन्ध व्युच्छित्ति नहीं है, क्योंकि बन्धापसरण मे एक-एक अन्तर्मुहूर्त में बन्ध की क्रम से हानि हो-होकर अन्त मे उन प्रकृतियो का बन्ध कुछ काल के लिये रुक जाता है। यह स्थिति आगे भी बनी रहती है। अर्थात् जैसे-जैसे विशुद्धि बढती जाती है वैसे-वैसे ज्ञानावरणादि प्रकृतियों का भी उत्तरोत्तर बन्ध कम-कम होता जाता है। इस प्रकार बन्धापसरण की प्रवृत्ति सर्वत्र तत्तत प्रकृतियो की बन्धव्युच्छित्ति के पूर्व तक जान लेना चाहिये। यह बन्धापसरण और बन्धव्युच्छित्ति मे अन्तर है। इतना अवश्य है कि यदि वह जीव पुनः लौटकर मिथ्यात्व गुणस्थान मे आ जाता है या पहले के गुणस्थानों में लौट आता है तो पुनः जहा जो गुणस्थान होता है वहा कर्मबन्ध की वही स्थिति बन जाती है। बन्धव्युच्छित्ति बन्धापसरणपूर्वक होती है, यही उन दोनों में अन्तर है, इसीलिये विशुद्धि के साथ बन्धापसरण होने मे कोई बाधा नहीं आती।

---

१५५. आगमचक्खु साहू ॥२३४॥ प्र. सा.।

३०. विसंयोजना :-

यह तो तय है कि अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना उपशम या वेदक सम्यग्दर्शन के होने पर होती भी है और नही भी होती। अब देखना यह यह कि मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे ऐसे जीव के, जिसने विसयोजना की है, उसके आने पर क्या होता है ? उसके विसयोजना बनी रहती है या अनन्तानुबधी चार का सक्रमणपूर्वक पुनः बन्ध होने लगता है। यह तो सब मानते हैं कि ऐसे जीव को मिथ्यात्व मे आने पर उसका पुनः सक्रमण और बन्ध होने लगता है। उदय के विषय मे विवाद है, क्योकि जब यह विसयोजना करनेवाला जीव सासादन गुणस्थान मे आवे तो नियम से सासादन मे अनन्तानुबधी चतुष्क मे से किसी एक का उदय माना ही गया है[१४६]। ऐसा जीव जब सीधा मिथ्यात्व मे आवे तो अनन्तानुबधी चारों मे से किसी एक के उदय के बिना भी मिथ्यात्व गुणस्थान बन जाता है, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान की प्राप्ति मिथ्यात्व के उदय से होती है, न कि अनन्तानुबधी चार मे से किसी एक के उदय से होती है[१४७]।

दूसरी ओर जब अनन्तानुबधी चार की विसयोजना नहीं करने वाला जीव सीधा सासादनपूर्वक मिथ्यात्व गुणस्थान मे आता है तब उसका क्या होता है ? इसका निर्देश तत्वार्थवार्तिक के ६वे अध्याय के पहले सूत्र मे इस प्रकार किया गया है। उसका भाव यह है कि आसादन का अर्थ सम्यक्त्व की विराधना करना। जो आसादन के साथ होती है उसे सासादन कहते है। जिससे वह सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है। उसके मिथ्यादर्शन के उदय नही होने पर भी अनन्तानुबधी के उदय से तीन सम्यग्ज्ञान अज्ञानरूप परिणम जाते है। इसलिए सासादन सम्यग्दृष्टि यह सार्थक सज्ञा है, अनन्त मिथ्यादर्शन है। उसका अर्थात् अनन्त का अनुसरण करने से अनन्तानुबधी कहलाती है। मानो वह मिथ्यादर्शनरूप फल का समर्पण करने से मिथ्यादर्शन का प्रवेश कराती है[१४८]। अर्थात् परिणामो के अनुसार मिथ्यात्व गुणस्थान होता है कोई किसी को प्रवेश नही कराती है यह ऊपर के उक्त कथन का अभिप्राय है।

---

१४६ कुदो तत्थाणाताणुबधीणामण्णादरपवेसणियमो ? णा सासणागुणास्सतदुदयाविणामि वित्तादो। कध पुव्वमसतस्साणाताणुबधिकसायस्स तत्थुदयसमवो ? णा परिणामपाहम्मेणा सेसकसायदव्वस्स तक्कालमेवतदायारेण परिणामिय उदयदसणादो ॥ ज घ भा १० पृ १२३-१२४।

१४७ कुदोअसत्तस्स अणताणु चाक्कस्स उप्पत्ती ? ण मिच्छत्तोदेण कम्मइय वग्गणक्खधाणमणताणु चउक्कासरूवेण परिणमण पडि विरोहाभावायो, जय घ ४, पु २४।

१४८ आसादन विराधन सहासादनेन वर्तते इति सासादना। सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्य सो य सासादनसम्यग्दृष्टिरिति। तस्य मिथ्यादर्शनोदयाभावे पि अनन्तानुबध्युदयात् त्रीणि ज्ञानानि अज्ञानान्येव भवन्ति। अत एवास्यान्वर्थसज्ञा। अनन्त मिथ्यादर्शन तदनुबन्धनादनतानुबन्धीति स हि मिथ्यादर्शनोदयफलमापादयत् मिथ्यादर्शनमेव प्रवेशयति। त वा अ ६, सू । पृ ३१७, वा १३ का प स का पाचवाँ अधिकार सप्ततिका की ३०५ गा।

यह तत्वार्थवार्तिक का उल्लेख है। इससे कई बातो पर प्रकाश पड़ता है। यथा–

(१) विसयोजना करनेवाला जीव एक दृष्टि से सासादन गुणस्थान मे आता है। एक दृष्टि से सीधा मिथ्यात्व मे आता है।

(२) जब सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है तब एक आवलि काल तक अनन्तानुबधी चारों मे से किसी का भी उदय नहीं होता, एक आवलि काल तक उनका अनुदय रहता है।

(३) अनुदय रहने का कारण यह है कि सक्रमावलि और बन्धावलि के एक आवलि काल तक अनतानुबधी चार का उदय नहीं हो सकता।

(४) उसका कारण है कि एक तो उदयावलि में निषेक रचना नहीं है, दूसरे बन्ध का आबाधा के ऊपर निषेक रचना मे बन्ध के कर्म परमाणु पाये जाते हैं, आबाधा मे नहीं तथा आबाधा मे सक्रम के कर्म परमाणुओं का निक्षेप नहीं होता। आबाधा के ऊपर निषेक रचना मे सक्रमित कर्म परमाणुओं का निक्षेप होता है, इसलिये एक आवलि काल के बाद उसका उदय होता है[१४६]।

(५) यह स्थिति एक आवलि काल तक बनी रहती है। उसके बाद उन कर्म परमाणुओं का अपकर्षण द्वारा उदय और उदीरणा होकर अनन्तानुबधी के कर्मपरमाणुओं का उदय से लेकर उदयावली मे निक्षेप हो जाता है। इसलिये गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रन्थो मे यह स्वीकार किया गया है कि सीधे मिथ्यात्व मे जानेपर अनतानुबधी चतुष्क के द्रव्य का एक आवलि काल तक उदय नहीं होता, अनुदय बना रहता है। अकि पु टिप्पण १०६ का अर्थ यह नहीं है कि इस नियम मे वह बाधा करे।

(६) उक्त इस नियम को षट्खण्डागम मे तो स्वीकार किया ही है, किन्तु कषाय-प्राभृत मे भी सासादन गुणस्थान के माहात्म्य का अपवाद स्वीकार कर लिया है।

इस व्यवस्था को ध्यान मे न रखकर अकिचित्कर पुस्तक मे षट्खण्डागम की प्ररुपणा को विवक्षित न कर यह लिख दिया है कि "मिथ्यात्व के उदय के साथ अनतानुबधी का उदय तो हमेशा रहता ही है।" साधारण पाठक तो इस बात को पकड नहीं सकता कि अनन्तानुबधी की विसयोजना करने वाला यदि मिथ्यात्व गुणस्थान में सीधा आता है तो अनन्तानुबधी का बन्ध तो होने लगता है, पर उसका एक आवलि काल तक उदय नहीं होता। प्रमाण १३४,१३१ टिप्पण मे दे दिया है।

---

१४६ आवलियमित्तकाल मिच्छत्त दसणाहिसपत्तो।
मोहम्मि य अणहीणो पढमे पुण णवोदओ होज्ज ॥३०५॥
अनन्तानुबन्धि विसयोजितवेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वकर्मोदयात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थान प्राप्ते आवलिमात्रकाल अनन्तानुबन्ध्युदयोनास्ति, अतो मोह प्रकृतीना दशकानामुदयः १० अनन्तानुबन्धिरहितो नवप्रकृतीनामुदयो मिथ्यादृष्टि प्रथमे गुणस्थाने भवेत्। गा ३०५॥ टी।
अणसजोजिदसम्मे मिच्छ पत्ते ण आवलित्ति अण।
उवसमखइये सम्म ण हि तत्थविचार ठाणाणि ॥४७८॥ गो क।

जो अकिंचित्कर पुस्तक मे १०६ क्रमाक का टिप्पण दिया गया है उसमे तो यह कहा गयाहै कि '**कसायउवसामेदूण पुणो विसजोइद, सजुत्त कादूण वेछावद्ठीदो सम्मत्तमणुणालिय मिच्छत्त गदो तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स अणताणुबंधीणं जहण्णओपदेसुदयो** । इससे मालूम पडता है कि ऐसा जीव दो छयासठ सागरोपम काल के पहले ही अनन्तानुबधी की विसयोजना को छोड़कर उससे सयुक्त हो चुका था इसलिये उसके सीधे मिथ्यात्व मे जानेपर आगम से कोई बाधा नही आती। उसके मिथ्यात्व मे जाने पर प्रथम आवलिकाल के भीतर ही अनन्तानुबधी का उदय बन जाता है, क्योकि चौथे आदि गुणस्थानो मे विसयोजना करनेवाला यह जीव सीधा मिथ्यात्व मे नहीं आया है। वह अनन्तानुबधी से सयुक्त होकर पहले दो छयासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्व के साथ और बीच मे अन्तर्मुहूर्त सम्यग्मिथ्यात्व के काल के बाद पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त कर घूमा है, उसके बाद ही वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ है। इसलिये यहा आगम का यह नियम लागू नहीं होता कि "विसयोजना करने वाला जीव सीधा मिथ्यात्व मे आवे तो अनन्तानुबधी से सयुक्त होने पर एक आवलि काल के भीतर अनन्तानुबधी का उदय नही होता।

यहा जो अकिचित्कर पुस्तक मे १०७ से लेकर ११२ तक के टिप्पण दिये हैं वे सक्रम की अपेक्षा टिप्पण बनकर भी बन्ध की अपेक्षा उनकी कोई आवश्यकता नही थी। यह तो सामान्य पाठक भी जानता है कि कर्मबन्ध नयी कार्माण वर्गणाओं का होता है उसे अकर्मबध कहते है। और सक्रम बधे हुए कर्म का होता है उसे ही कर्मबन्ध कहते है।

३१. मिथ्यात्व भावात्मक भी है और बन्धक भी :-

यह तो सामान्य पाठक भी जानते है कि जितने प्रत्यय् है वे योग को गौण कर भावात्मक भी हैं, और कारणपने की अपेक्षा भावात्मक भी हैं और बन्धक भी है। इसलिये उनके निमित्त से बन्ध होने मे कोई बाधा नहीं आती। मिथ्यात्वरूप भाव न हो तो मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का बन्ध भी न हो[१५०]। इसलिये मिथ्यात्व भावात्मक होकर भी मिथ्यात्व, नपुसकवेद आदि १६ प्रकृतियो का बन्धक भी है। देखो! मिथ्यात्व गुणस्थान मे अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय मे मिथ्यात्व का बन्ध और उदय नियम से होता रहता है[१५१]। अनन्तानुबधी के नये बन्ध के लिये मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान का होना आवश्यक है[१५२]। इसका एक अपवाद है। उसका उल्लेख टिप्पण१३६ मे कर आये है।

---

१५० ध पु. ८ सू. १५-१६ पृ ४२ ४३।

१५१ मिच्छत्तस्स बधोदया सम वोच्छिज्जन्ति, मिच्छाइट्ठिचरिमसमए बधोदयवोच्छेददसणादो। ध पु. ८ पृ ४३।

१५२ अणताणुबधिचउक्कस्स बधोदया सम किर्ह्ति सासणसम्माइट्ठिचरिमसमेए एदेसिं बधोदयाण जुगव वोच्छेददसणादो। ध पु ८ पृ ३१।

मिथ्यात्व के उदय से जीव मे अतत्व श्रद्धान रूप भाव हो और वह मिथ्यात्व आदि नये कर्मों को बन्ध मे भी निमित्त हो इसमे कोई बाधा हो तो उसका आगम मे उल्लेख मिलना चाहिए ? क्योकि कषाय पर भी ऐसा आक्षेप कर सकते हैं कि द्रव्यार्थिकनय से वह भी बन्ध का कारण नहीं है । जैसे पर्याय एकान्त से बन्ध का कारण नहीं होती, वैसी ही द्रव्यार्थिकनय का सामान्य विषय भी एकान्त से बन्ध का कारण नहीं होता ।

हिंसा विषयक जीव के व्यापार को प्राणातिपात कहते है ।

यहा शका उठायी गई है कि हिंसा विषयक जीव का व्यापार तो पर्याय है, और पर्याय एकान्त से बन्ध का कारण नहीं हो सकता[१५३] ।

इसका समाधान करते हुए लिखा है कि हिसा विषयक जीव का व्यापार जीव के कथचित् अभिन्न है, इसलिये उसमे कारणता बन जाती है ।

इस प्रकार इस समाधान से यह निश्चित हो जाता है कि पर्याय को जीव से कथचित् अभिन्न मानने पर वह ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्धक बन जाता है[१५४] ।

मोह शब्द का अर्थ करते हुए वे प्र अ मे लिखा है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद और मिथ्यात्व के समूह को मोह कहते है[१५५] ।

यहा यह शका उठायी गई है कि मोह प्रत्यय का अन्तर्भाव क्रोधादिक मे हो जाता है इसलिये वह प्रत्यय नही हो सकता ?

इसका समाधान करते हुए लिखा है कि क्रमशः व्यतिरेक और अन्वयस्वरूप अनेक तथा एक सख्या वाले कारण और कार्यरूप तथा एक व अनेक स्वभाव से सयुक्त अवयव और अवयवी के एक होने का विरोध है । तात्पर्य यह है कि मोह अवयवी है और क्रोधादिक अवयव हैं तथा मोह अन्वयस्वरूप है और क्रोधादिक भाव व्यतिरेकस्वरूप है, इसलिये उन्हे सर्वथा एक नही माना जा सकता क्योंकि क्रोधादिक अवयव हैं, और मोह अवयवी है, इसलिये उनमे कथचित् भेद बन जाता है । इसलिये नैगमनय, सग्रहनय और व्यवहारनय का सर्वथा निषेध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे कथचित् द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा मे कथन करते हैं । और स्थूल ऋजुसूत्रनय कथचित् पर्याय को मुख्य मानकर कथन करता है । सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का तो कारण औरकार्य केविषय मे अधिकार ही नही है । इसीलिये आगम मे ऋजुसूत्रनय का दो प्रकारसे कथन उपलब्ध होता है–एक सूक्ष्मऋजुसूत्रनय और दूसरा स्थूल ऋजुसूत्रनय ।

---

१५३ पाणादिवादो णाम हिंसाविसयजीववावारो । सो च पज्जाओ । तदो ण सो कारण, पज्जायस्स एयतस्स कारणत्तविरोहादो । ध पु. १२–वे प्र अ , पृ २७६ ।

१५४ णाणावरणीयबंधणिबंधणपरिणामणिदोवट्टदे पाण-पाणिवियोयो वयणकलावो च । तम्हा तदो तेसियभेदो । तेणेव कारणेण णाणावरणीबंध तेसिं पच्चयत्त पि सिद्ध ध पु. १२–वे. प्र अ , पृ २८०-२८१ ।

१५५, ध पु १२-वे प्र अ , पृ २८३ ।

वे प्र अ के पृ २६० मे यह प्रश्न उठाया गया है कि कषाय और योग ये दो प्रत्यय ही आठ कर्मों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद को प्राप्त हुए कर्मों के बन्ध की कारणता को कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?

उसका समाधान करते हुए अशुद्ध ऋजुसूत्र रूप पर्यायार्थिकनय मे अनन्त शक्ति सयुक्त एक द्रव्य का अस्तित्व बन जाता है।

इससे मालूम पडता है कि द्रव्यार्थिकनय में पर्याय विवक्षित होकर भी वह द्रव्य की प्रधानता से कथन करता है और अशुद्ध ऋजुसूत्रनय मे द्रव्य विवक्षित होकर भी वह पर्याय की मुख्यता से कथन करता है।

इसलिये अकिचित्कर पुस्तक पृ ४७ मे जो सामान्य प्रत्यय की विवक्षा मे नैगम, सग्रह और व्यवहारनयो की अपेक्षा कथन किया गया है, वह एकान्त होने से इस प्रकरण मे ग्राह्य नही है। यहा पृ ४६ मे जो टिप्पणी लिखी है उसमे "सामान्य प्रत्यय" शब्द नहीं है, फिर भी अपने कथन मे यह शब्द जोड दिया गया है। ऐसा क्यो किया गया यह अकिंचित्कर पुस्तक ही बतलावे। इसी प्रकार आगे चलकर पर्यायार्थिकनय को बन्ध मे प्रयोजक माना गया है तो वहा टीका मे पर्यायार्थिकनय मे स्थूल ऋजुसूत्रनय की विवक्षा क्यो की गयी ? इस पर भी अकिंचित्कर पुस्तक को ध्यान देना चाहिये। हम इतना कहेगे कि चाहे द्रव्यार्थिकनय हो या चाहे पर्यायार्थिक नय मे ऋजुसूत्रनय हो, दोनो मे एकान्त ग्राह्य नहीं है।

अकिचित्कर पुस्तक पृष्ठ ६१ का उल्लेख हम पहले ही कर आये है। इसमे मिथ्यात्व को भावात्मक बतलाकर मिथ्यात्व के द्वारा मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो के बन्ध का निषेध किया गया है। इसलिये पृच्छा होती है कि तत्वार्थसूत्र आदि मे मिथ्यात्व को बन्ध के कारणो मे क्यों गिनाया गया है ? मिथ्यात्व तो भावात्मक है उससे अतत्वश्रद्धान भाव होता है। वहा मिथ्यात्व के स्थान पर अनन्तानुबधी के उदय को बन्ध के कारणों मे गिनाया जाना चाहिए था। ऐसा क्यो नहीं किया।

दूसरे सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुबधी का बन्ध और उदय दोनो है, इसलिये यदि अनन्तानुबधी ही मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का बन्ध कराती है, तो सासादन गुणस्थान मे भी मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का बन्ध क्यो नहीं कराती ? प्रथम गुणस्थान मे ही उनकी बन्धव्युच्छित्ति क्यों हो जाती है ?

यदि कहो कि अनन्तानुबधी का बन्ध और उदय प्रथम गुणस्थान मे ही हो जाता है, इसलिये ही वह १६ प्रकृतियो के बन्ध का प्रयोजक है, किन्तु अनन्तानुबधी का यह बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थान मे एक अपेक्षा से बन जाता है, क्योंकि जो जीव अनन्तानुबधी की विसयोजना नहीं करता उसके ऊपर से गिरकर मिथ्यात्व में आने पर या एक अपेक्षा से अनन्तानुबधी की विसयोजना करनेवाले के सासादन के बाद मिथ्यात्व मे आने पर मिथ्यात्व गुणस्थान मे अनन्तानुबधी का बन्ध और उदय दोनो बन जाते हैं। किन्तु जो जीव अनन्तानुबधी की विसयोजना करके सीधा मिथ्यात्वगुणस्थानमे आता

है उसके अनन्तानुबधी का पहले समय से बन्ध होने पर भी उसका एक आवलिकाल तक उदय नही होता, यह षट्खण्डागम स्वीकार करता है। मात्र इसीलिये षट्खण्डागम के बन्धस्वामित्व विचय नाम के खण्ड मे पहले गुणस्थान मे भय-जुगुप्सा सहित विकल्प से ८ का या भय, जुगुप्सा मे से किसी एक के बिना ७ का या दोनो के बिना ६ का उदय स्वीकार किया गया है। यहा अनन्तानुबधी चारो के उदय को छोड़ दिया गया है। जो यह प्ररुपण सम्बन्धी गड़बड़ अकिचित्कर पुस्तक मे बराबर देखने को मिलती है। आगम मे यह गड़बड़ कही भी देखने को नही मिलेगी।

यदि धवला पु १२ के पृ २८१ मे जो यह वचन देखने को मिलता है कि कषाय प्रत्यय के प्ररूपणा के लिये आगे का सूत्र कहते है[१५६]। सो यह वचन भी द्रव्यार्थिकनय का ही है, क्योकि अभी द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा मे प्ररूपणा चल रही है। उसमे मोह प्रत्यय का भी उल्लेख किया गया है और मोह का अर्थ करते हुए धवला टीका मे मोह का अर्थ[१५७] क्रोध-मान, माया, लोभ, हास्य रति अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरूषवेद नपुसकवेद और मिथ्यात्व इन रूप किया गया है। निदान प्रत्यय भी द्रव्यार्थिकनय का वचन है। उसमे भी मिथ्यात्व से निदान का कथचित् भेद बतलाया गया है। आगे "अब्भक्खाण" प्रमुख प्रत्ययो मे सूत्र मे ही मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन का उल्लेख ही दृष्टिगोचर होता है[१५८]। पर्यायार्थिकनय रूप ऋजुसूत्रनय की विवक्षा मे भी दो प्रकार का बन्ध योग और दो प्रकार का बन्ध कषाय से स्वीकार किया गया है[१५९]।

इस प्रकार हम देखते है कि सातो नयो से मिथ्यात्व की निमित्तता स्वीकार कर ली गयी है। इसलिये यह कहना कि मिथ्यात्व भावात्मक है, इसलिये वह बन्ध का निमित्त नही बन सकता। यह तो पाठकों को भ्रम मे डालनेवाली बात हुयी। आगम मे इसकी पुष्टि नही की जा सकती।

३२. नयों की विवक्षा में सामान्य-विशेष प्रत्यय-

अकिचित्कर पुस्तक मे इस हेडिग के अन्तर्गत (पृष्ठ ४५) सामान्य-विशेष प्रत्ययो का विचार करते हुए सामान्य प्रत्यय, सामान्य औघ प्ररूपणा को स्वीकार कर और विशेष प्रत्यय आदेश प्ररूपणा को स्वीकार कर लिया है यह हमारा ख्याल है। आगे

---

१५६ सपहि कसायपच्चयपरूवणट्ठमुत्तत्त मणदि। घ पु १२, पृ २८३।

१५७ क्रोध-मान-माया-लोम-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पु-नपुसकवेद-मिथ्यात्वाना समूहो मोहः। घ पु १२ पृ २८३।

१५८ मिच्छत्तसहयरिस्स मिच्छत्तेण एयत्तविरोहादो। घ पु १२, पृ २८४।

१५९ अब्भक्खाण-कलह-पेसुण्ण-रइ-अरइ-उवहि-णियदि-माण-माय-मोस-मिच्छणाण-मिच्छदसण-पओअपच्चए। घ पु १२, पृ २८५।
उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणाजोगपच्चए पयडिपदेसग्ग ॥१२॥
कसायपच्चए ट्ठिदि-अणुभागवेयणा ॥१३॥ घ पु १२ सू. १२-१३, पृ २८८।

अकिंचित्कर पुस्तक पृ ४७ मे सामान्य प्रत्यय का लक्षण करते हुए लिखा है कि – "सामान्य प्रत्यय वे कहे जाते है जो कि बन्ध के समय उदय अस्तित्व मे अपेक्षित होते हैं। इस सामान्य प्रत्ययो के अन्दर मिथ्यात्व आदि कई प्रत्यय रखे गये है। उनका वर्णन नैगम, सग्रह और व्यवहार नयो से किया जाता है।" आगे अयशः–कीर्ति के बन्ध की अपेक्षा उदाहरण देकर उसे समझाया गया है और अकिं पु पृ ४७ मे लिखा है कि "मिथ्यात्त्व का उदय अयशकीर्ति के बन्ध के लिये नियामक कारण नही हुआ अपितु सामान्य कारण ही हुआ।"

आगे चलकर लिखा है कि "इस विषय को ऐसे समझा जा सकता है कि ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बन्ध करनेवाला प्राणातिपात प्रत्यय भी कहा गया है। और वहा प्राणातिपात का अर्थ सीधा प्राणों का व्यपरोपण ही लिया गया है। इसी तरह आगे मृषावाद प्रत्यय अदत्तादान प्रत्यय मैथुन और परिग्रह प्रत्ययो को भी ग्रहण किया गया है।"

आगे "विशेष प्रत्यय की चर्चा करते हुए ऋजुसूत्रनय के आश्रित इनसे अलग ही प्रत्यय कहे गयेहै, कारण कि वे साक्षात् बन्ध की नियामकता से सम्बन्ध रखते है। ऋजुसूत्रनय की विवक्षा मे दो प्रत्यय कहे गय है कषाय और योग।" अकि पु पृ ५०

"यहा सामान्य और विशेष प्रत्ययो से इतना ही ज्ञातव्य है कि सामान्य प्रत्यय के होने पर बन्ध रूप कार्य ही हो, ऐसा नहीं, किन्तु विशेष प्रत्यय के सद्भाव मे कार्य की निष्पत्ति अवश्यभावी होती है।" उसी प्रकार प्राणातिपातादि प्रत्ययो के द्वारा लोक व्यवहार की प्रवृत्ति प्रचलित होती है इसलिए ही इनका कथन किया गया है।

"इस प्रकार कार्य की निष्पत्ति और लोकव्यवहार दोनो के लिये यथायोग्य प्रत्ययो की विवक्षा समझकर आगम के सही–सही वाच्यार्थ तक गति करने का पुरूषार्थ करना चाहिए।" अकि पु पृ ५०–५१

यह अकिचित्कर पुस्तक का कथन है। अब इस पर विचार क्रम प्राप्त है। उसमे सर्वप्रथम निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध के विषय मे विचार करना है। यहा पर ससारीजीव और कर्म और नोकर्मरूप पुद्गल का बन्ध ही निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध की कक्षा मे आता है। तत्वतः यह बन्ध भी ससारी जीव के बनता है, मुक्त जीव कर्म–नोकर्म बन्ध उदय और सत्व से मुक्त है। ससारी जीव के ही यह सम्बन्ध बनता है। क्योकि जीव अन्य द्रव्य है और पुदगल अन्य द्रव्य है। उपादान–उपादेय सम्बन्ध तो एक ही द्रव्य मे बनता है, किन्तु निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध के लिये मुख्य रूप से दो द्रव्य अपेक्षित रहते है। उनके बिना यह सम्बन्ध नही बन सकता। ससारी जीव के किन परिणामो की अपेक्षा सम्बन्ध बनता है। इसके लिये तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय मे यह कहा गया है कि –मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग कर्मबध के कारण है। यहा किसी की मुख्यता और गौणता का प्रश्न ही नहीं उठता। सामान्य से सब मुख्य है। इतना अवश्य है कि जिन प्रकृतियों की मिथ्यात्व गुणस्थान मे बन्ध और व्युच्छित्ति होती है

उनमे मुख्यतया मिथ्यात्व की निमित्तता स्वीकार की गयी है । अन्यथा उनकी मिथ्यात्व गुणस्थान मे बन्ध और उदय व्युच्छित्ति नहीं हो सकती । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए । निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध मुख्यता से नैगमनय का विषय है । सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का विषय नही । प्रमाण पहले दे आये है ।

सामान्य प्रत्यय का लक्षण लिखते समय अकिंचित्कर पुस्तक पृ ४७ मे लिखा है कि "सामान्य प्रत्यय वे कहे जाते है जो कि बन्ध के समय उदय अस्तित्व मे अपेक्षित होते हैं ।" इन सामान्य प्रत्ययो के अन्दर मिथ्यात्व आदि कई प्रत्यय रखे गये है ।

इसलिये ऐसा लगता है कि अपनी इष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिये ऋजुसूत्रनय को मुख्यता दी गयी है, अन्य नयो को यहा गौण कर दिया गया है । जब कि वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे सब नयो की अपेक्षा विचार किया गया है । वहा यह भेद नहीं किया गया कि वे सामान्य प्रत्यय है और ये विशेष प्रत्यय है । यह तो अकिंचित्कर पुस्तक की ही करामात है ।

अपनी इष्टसिद्धि के लिये कतिपय ऐसे उदाहरण भी दिये गये हैं, जो प्रथम गुणस्थान आदि मे कभी बन्ध योग्य सामग्री के रहने पर बँधते है, और कभी अपनी बन्ध योग्य सामग्री के नही रहने पर नही बधते । मिथ्यात्व आदि के रहते हुए भी अन्य बन्ध योग्य सामग्री नही हो तो नही बधते । मिथ्यात्व अविरति आदि ही सामान्य रूप से बन्ध के कारण हो, ऐसा तो जिनागम मे नही स्वीकार किया गया है विशेषरूप ही से इन्हे स्वीकार किया गया है । मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग गुणस्थान के अनुसार अवश्य होने चाहिए, अन्य कारण मिले तो बन्ध हो, नही मिले तो बन्ध नही हो ।

यही बात सर्वत्र भी स्वीकार की गई है । जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के पूर्व पाँच लब्धियाँ नियम से होती है पर उनमे चार लब्धिया हो और पाँचवी करणलब्धि न हो तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती । उसी प्रकार अन्य सामग्री भव्यता पचेन्द्रिय पर्याप्तता, सज्ञी आदि सामग्री हो तो मिथ्यात्व के नहीं रहने पर भी जिन प्रकृतियो का बन्ध होना चाहिए उनका बन्ध नहीं होगा ।

उसमे भी काल नियम मुख्य है । जितने काल तक जिस प्रकृति का बन्ध होता है उसके समाप्त होने पर उस प्रकृति का बन्ध नहीं होगा, उसका स्थान दूसरी प्रकृति ले लेगी ।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का बन्ध उनके योग्य सामग्री रहने पर नियम से होता है । पर इसका अर्थ यह नही कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे अन्य प्रकृतियो का बन्ध ही न हो । उनमे से कितनो का विकल्प भी चलता है, कितनो का विकल्प नही चलता ।

मिथ्यात्व , मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों के बन्ध के लिये आसाधारण कारण है तथा दूसरी प्रकृतियों के बन्ध के लिये साधारण कारण है, क्योंकि उनका बन्ध अन्य गुणस्थानों मे भी होता है ।

मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का बन्ध हो तो मिथ्यात्व भाव होना ही चाहिए। स्त्रीवेद आदि का बन्ध हो तो मिथ्यात्व भाव रहे या न रहे कोई बाधा नहीं आती। नपुसक वेद का जितना बन्ध का काल है उतना काल समाप्त होने पर मिथ्यात्व भाव के रहते हुए भी उसका स्थान स्त्रीवेद आदि अन्य प्रकृति ले लेती है यह उसका तात्पर्य है। इसलिये काल भेद से या अधिकारी पुरूष के भेद से मिथ्यात्व गुणस्थान मे ११७ प्रकृतियो का बन्ध बन जाता है। अकिचित्कर पुस्तक मे अपनी मानी हुई दृष्टि को छोडकर सर्वांग दृष्टि से विचार किया जाता तो अच्छा होता।

ऋजुसूत्रनय से ही विचार करे तो कषाय और योग तो प्रथम गुणस्थान मे भी है, तो कषाय और योग से यह निर्णय क्यो नहीं होता कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे ११७ प्रकृतियो का बन्ध न होकर विवक्षित का ही बन्ध हो, अन्य का न हो ?

यदि कहो कि उसमे कषाय भाव की अपेक्षा मन्द-तीव्र भाव या ज्ञात-अज्ञात भाव मुख्य है और योग की अपेक्षा मन-वचन और काय के शुभ-अशुभ कम्पन मे भी कम शुभ, अशुभ कम्पन और तीव्र शुभ-अशुभ कम्पन मुख्य है। इनके भेद से प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्ध मे भेद पडना स्वाभाविक है। यदि ऐसा है तो सब दृष्टि से यहा अकिचित्कर पुस्तक मे क्यों नहीं विचार किया गया है ? इसका हमे आश्चर्य है।

अब यहा अकिचित्कर पुस्तक के अनुसार सामान्य प्रत्यय की अपेक्षा विचार करते है। वहा सामान्य प्रत्यय का लक्षण करते हुए अकिचित्कर पुस्तक के पृ ४७ मे लिखा है कि "सामान्य प्रत्यय वे कहे जाते है जो कि बन्ध के समय उदय अस्तित्व मे अपेक्षित होते है। इन सामान्य प्रत्ययो के अन्दर मिथ्यात्व आदि कई प्रत्यय रखे गये है।"

यह अकिचित्कर पुस्तक का वक्तव्य है। यहा तो स्वीकार किया गया है कि मिथ्यात्व के बन्ध के लिये मिथ्यात्व भाव तो हो पर मिथ्यात्व भाव, मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियो के लिए बन्ध का कारण नहीं है, योग और कषाय ही बन्ध के कारण है मिथ्यात्व भाव, मिथ्यात्व के लिए अकिचित्कर है यह अकिचित्कर पुस्तक का आशय मालूम पडता है। अब इस पर गहराई से विचार करे। उसमे भी पहले तो आगम से विचार करे। आगम मे मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का बन्ध मिथ्यादृष्टि करता है। उनका[१६०] सवर मिथ्यात्व के अभाव होने पर होता है। सर्वार्थसिद्धि के ६वे अध्याय के प्रथम सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो आत्मा मिथ्यात्व प्रकृति कर्म के उदय के आधीन है वह मिथ्यादृष्टि है। इसके मिथ्यादर्शन की प्रधानता से जिस कर्म का आस्त्रव होता है उसका मिथ्यादर्शन के अभाव मे शेष रहे सासादन सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानो मे सवर होता है[१६१]।

---

१६० चदुहि मूलपच्चएहि पचवचासणाणासमय उत्तर पच्चएहि दस अट्ठारसेगसमय जहण्णुक्क स्सपच्चएहि य मिच्छाइट्ठी एदाओपयडीओ बधइ। णवरि ध पु ८ सूत्र १५-१६ की टीका पृ ४२-४४।

१६१ तत्र मिथ्यादर्शन प्राधान्येन यत्कर्म आस्रवति तन्निरोधाच्छेषे सासादनसम्यग्दृष्ट्यादौ तत्सवरो भवति। स सि अ ६ पृ ३१८।

इसी प्रकार आगे के गुणस्थानो मे भी सवर किन-किन प्रकृतियों का होता है यह भी वहा बतलाया गया है। यहा वीरसेनाचार्य को यह लिखना चाहिए था कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे योग और कषाय से ही मिथ्यादर्शन १६ प्रकृतियों का बन्ध होता है। परन्तु यह नही लिखा इससे मालूम पड़ता है कि मिथ्यात्व भी बध का कारण है।

बन्ध के हेतुओं मे से मिथ्यात्व रूप हेतु के अभाव होने से आगे मिथ्यात्व से बधने वाली प्रकृतियो का अभाव हो गया, आगे के गुणस्थानों मे भी यथायोग्य सवर लगा लेना चाहिए। बन्ध हेत्वभावनिर्जराम्या कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षोमोक्षः। (त् स् अ १०, स् २) 'बन्ध के हेतुओं का अभाव होने से नये कर्मों का आस्त्रव रूकता है और निर्जरा से बधे हुए कर्मों का अभाव होता है।

इस अपेक्षा से मिथ्यात्वभाव १६ प्रकृतियों के नये बन्ध की अपेक्षा विशेष प्रत्यय हुआ। और मिथ्यात्व गुणस्थान मे जितनी अन्य प्रकृतियो का अधिकारी भेद से एक समय मे या नाना समयों मे बन्ध होता है वह सामान्य प्रत्यय हुआ, क्योंकि उनका बध द्वितीयादि गुणस्थानो मे भी होना समव है। यह विशेष प्रत्यय और सामान्य प्रत्यय का विचार है[१६२]।

यदि कहा जाय कि योग और कषाय तो प्रथमादि गुणस्थानो मे भी है। उनसे नया बन्ध माना जाय तो क्या आपत्ति है ? यह एक प्रश्न है। उसका समाधान यह है कि योग और कषाय तो आगे के गुणस्थानो मे भी हैं, यदि मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का नया बन्ध मात्र उनसे माना जाता है, तो मिथ्यात्व मे उन प्रकृतियो का बन्ध होकर भी अन्य गुणस्थानो मे भी मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का नया बन्ध होना चाहिए। दूसरे आदि अन्य गुणस्थानो मे उन १६ प्रकृतियो का सवर नहीं होना चाहिए। मिथ्यात्व गुणस्थानो मे ही मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियों का नया बन्ध होता है। अन्य गुणस्थानो मे मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का नया बन्ध क्यो नहीं होता ? यह प्रश्न योग और कषाय को ही बन्ध का कारण मानने पर उपस्थित होता है, इसलिये मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे जो नया बन्ध होता है, उसका कारण उन-उन गुणस्थानों में मिथ्यात्व आदि को नये बन्ध का कारण मान लेना आवश्यक है, यह इस कथन का निष्कर्ष है।

३३. पुनः लक्ष्य का प्रतिपादन :-

फिर वेदनाप्रत्यय अनुयोग द्वार मे १२वें और १३वे सूत्र की रचना क्यों की ? "**जोगापयडिपदेसेट्ठिदी अणुभागे कसायदो कुणदि**" यह गाथा सर्वत्र लिपिबद्ध हुई है सो नही होनी चाहिये थी[१६३] ? तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय मे जो दूसरे सूत्र की रचना हुई है, उसे नहीं रचा जाना चाहिए था[१६४] ? इन सब उल्लेखों से यद्यपि ऐसा ही जान

१६२ स सि अ ८ सू ।, मिथ्यादृष्टि, पचापि समुदिता बन्धहेतवो भवन्ति। आदि। मिच्छत्तणवुसकवेद-णिरायु, णिरयगदि-चदुजादि-हुड स -असपत्तसेवट्ट णिरयगदि पाओगाणुपुव्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-को बधो को अबधो ? मिच्छाइट्ठी बधा अवसेसा अबधाः। महा ब भाग१, पृ ३१।

१६३ घ पु १२, पृ २८६।

१६४ स सि अ ८ सू २।

पड़ता है कि ग्रन्थकार को सर्वत्र योग और कषाय को नये बन्ध में बन्ध का हेतुपना स्वीकार है क्या ?

समाधान —यह है कि जैनधर्म में सर्वत्र नय विवक्षा से कथन किया गया है[१६५], और स्थूल ऋजुसूत्रनय से योग और कषाय मात्र नये बन्ध के हेतु हैं और शब्दादि तीन नयो से अवक्तव्य है ।

शका —वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार के १३ वे सूत्र की टीका मे यह कथन किया गया है कि द्रव्यार्थिक तीनो नयों की अपेक्षा प्राणातिपातादिकों को प्रत्यय बतलाना कैसे उचित है ?

समाधान —नही, क्योंकि, उनके होने पर ज्ञानावरणीय का बन्ध पाया जाता है[१६६]। कारण, कार्य वाले अवश्य हो, ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि घटको नहीं करने वाले कुम्भकार को भी कुम्भकार शब्द का व्यवहार पाया जाता है । दूसरे पर्याय के भेद से वस्तु का कोई भेद नहीं होता है, क्योंकि, वस्तु-भिन्न पर्याय का अभाव है, तथा इस प्रकार से समस्त लोक व्यवहार के नष्ट होने का प्रसग प्राप्त होता है । न्याय की चर्चा लोक व्यवहार की प्रसिद्धि के लिये ही की जाती है । लोक व्यवहार के बहिर्गत न्याय नही होता है, किन्तु वह केवल न्यायाभास ही है । इसलिये उक्त नैगमादि नयों में प्राणातिपातादिको को प्रत्यय बतलाना योग्य ही है, अर्थात् इनमे कारणता बन जाती है ।

इस पूरे कथन का आशय यह है कि चाहे सकल्पपूर्वक प्राणातिपात आदि कार्य किये हो या बिना सकल्प के, जैसे किसी का वध आदि कार्य हो जाय तो भी वह व्यक्ति लोक मे दोष का भागी माना जाता है । यह वस्तुस्थिति है । फिर भी अकिंचित्कर पुस्तक पृ ४८ मे प्राणातिपात का अर्थ सीधा प्राणों का व्यपरोपण ही लिया गया है । इसी तरह आगे मृषावाद प्रत्यय अदत्तादान प्रत्यय मैथुन और परिग्रह का अर्थ किया गया है[१६७] । इसी सन्दर्भ मे रात्रिभोजन भी एक प्रत्यय के रूप मे रखा गया है । अब अगर देखा जाये तो, जो महाव्रती मुनि महाराज हैं उनका तो इन सभी क्रियाओं का मन, वचन, काय से अतरग-बहिरग रूप से सर्वथा परित्याग है, फिर उनके तो आठों कर्मों का बन्ध नही होगा ? इसलिए प्राणातिपात मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन आदि इन प्रत्ययो से ज्ञानावरणादि कर्मों का बन्ध नहीं होता । क्योंकि इनके बिना भी अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती जीवों के इनका बन्ध होता है[१६८] । तब यहाँ समाधान दिया गया है कि वह प्रत्यय व्यवस्था तो नैगम सग्रह और व्यवहार नयों की अपेक्षा की गयी है । अत यह सभी सामान्य प्रत्यय माने जाते हैं । उन्होंने कहा —

१६५ ध पु १२, पृ २८६ ।

१६६ ध पु १२, पृ २८६ ।

१६७ ध पु १२ पृ २७८-२८० ।

१६८ ध पु १२, पृ २८० ।

ज्ञानावरणादि कर्मों के प्रत्ययों को सुखपूर्वक ज्ञान कराने के लिये इन सामान्य प्रत्ययो का विवक्षित किया गया है[१६६] ।

यह अकिंचित्कर पुस्तक के आधार से बहुभाग कथन है । अब क्रमशः इसका समाधान किया जाता है ।

यदि द्रव्यार्थिकनय का कथन सामान्य की विवक्षा में सामान्य का अर्थ द्रव्य करके माना जाये तो जैसा अकिंचित्कर पुस्तक मे प्राणातिपात आदि का अर्थ किया है एक अपेक्षा से वह ठीक कहा जा सकता है । परन्तु द्रव्य का लक्षण गुण-पर्याय वाला करके किया जाता है, तो अकिंचित्कर पुस्तक का कथन ठीक नहीं बैठता, क्योंकि प्राणातिपात का अर्थ प्राणों से प्राणी का वियोग होकर भी वह जिस मन, वचन और काय के व्यापार आदि से होता है वह भी प्राणातिपात है । इसी प्रकार मृषावाद का अर्थ असत्य वचन करके भी वह मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचन समूह का नाम भी वह मृषावाद है । अदत्तादान का अर्थ न दी हुई वस्तु का ग्रहण करना किया है । वही है प्रत्यय, इसलिए वह अदत्तादान प्रत्यय कहलाया । उससे ज्ञानावरणीय वेदना होती है । मैथुन का अर्थ सीधा स्त्री-पुरुष विषयक व्यापार क्रिया है । वह मन, वचन और कार्य रूप होता है । इसलिये वह मैथुन कहलाता है । जो ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है । उससे क्षेत्रादि बाह्य वस्तु का ग्रहण होता है, इसलिये उसका अर्थ हुआ कि जिस भाव से ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है । जो खाया जाता है वह भोजन है । इसका अर्थ है कि जिस परिणाम से खाया जाता है वह परिणाम भोजन है[१७०] । इसमे खाद्यादि सब पदार्थ आ जाते हैं । इस प्रकार हम देखते है कि प्राणातिपात मे वह परिणाम लिया गया है जो प्राणातिपात आदि का कारण है ।

शका :—प्राणातिपात का अर्थ हिंसाविषयक जीव का व्यापार है, वह तो पर्याय है और पर्याय एकात से कारण नहीं हो सकती ।

समाधान :—जिसने परपक्ष को आकर्षित किया है वह पर्याय प्रधानता से कारणता को प्राप्त हो जाती है ।

शका :—पर्याय की सप्तमी विभक्ति मे उत्पति कैसे हो सकती है ?

समाधान :—नहीं, क्योंकि प्राणातिपात के विषय मे ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना होती है ऐसा सम्बन्ध करने पर विषयार्थक सप्तमी विभक्ति के बनने मे कोई विरोध नहीं आता[१७१] । अथवा तृतीया विभक्ति के अर्थ मे सप्तमी विभक्ति जाननी चाहिये । इसलिये इसका अर्थ हुआ कि प्राणातिपात प्रत्यय के कारण ज्ञानावरणीय आदि वेदना होती है यह सूत्र का अर्थ सिद्ध हो जाता है । इसलिये न तो एकान्त से द्रव्य से कोई कार्य बनता है और न एकान्त रूप पर्याय से कोई कार्य बनता है किन्तु पर्याय से अनुगत द्रव्य ही कार्य के होने में निमित्त माना गया है ।

---

१६६. ध पु. १२, पृ २८१ ।
१७० ध पु. १२, सू. ६-७, पृ. २८२ ।
१७१ ध पु. १२, पृ २७६ ।

इसी कारण सूक्ष्मऋजुसूत्रनय कार्यकारी नहीं माना गया है । वहाँ स्थूल ऋजुसूत्रनय की विवक्षा करनी पड़ती है । इसी सम्बन्ध मे वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार के १४ वे सूत्र की टीका का अनुवाद यहाँ दे देना चाहते है जो इस प्रकार है –

"स्थिति, अनुभाग, प्रकृति और प्रदेश के भेद से बन्ध चार प्रकार का है । उनमे प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग से तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय से होते हैं, इस प्रकार आठो कर्मों के दो प्रत्यय प्राप्त हुए ।"

शका –उक्त दो ही प्रत्यय आठों कर्मों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप बत्तीस बन्धों (आठ प्रकार के कर्मों का चार प्रकार का बन्ध ८ x ४ = ३२) की कारणता को कैसे प्राप्त हो सकते है ?

समाधान –नहीं क्योंकि अशुद्ध पर्यायार्थिकरूप ऋजुसूत्रनय मे अनन्त शक्ति सयुक्त एक द्रव्य के अस्तित्व मे कोई विरोध नहीं आता ।

शका –वर्तमान काल विषयक ऋजुसूत्रनय मे वस्तु का (पर्यायान्तर मे गमनरूप) द्रवण का अभाव होने से ऋजुसूत्र नय का विषय द्रव्य नही हो सकता, इसलिये ऋजुसूत्रनय मे ज्ञानावरणीयवेदना नहीं बन सकती ?

समाधान –ऐसा कहने पर उसका उत्तर है कि ऐसा मानना ठीक नही है, क्योंकि वर्तमान काल व्यजनपर्याय का अवलम्बन लेकर अवस्थित है तथा वह अपने अवयवो को प्राप्त है, अत उसके द्रव्य होने मे कोई विरोध नहीं है । अथवा विवक्षित पर्याय से वर्तमानता को प्राप्त वस्तु का अनर्पित पर्यायो मे द्रवण का विरोध न होने से ऋजुसूत्रनय का विषय द्रव्य बन जाता है[१७२] ।

इस प्रकार अशुद्ध ऋजुसूत्रनय मे द्रवण की विवक्षा कर सभी कर्मों का चारो प्रकार का बन्ध घटित किया गया है[१७३] ।

अकिंचित्कर पुस्तक पृ० ४६ मे सामान्य प्रत्यय की विवक्षा मे नैगम, सग्रह और व्यवहारनयो की अपेक्षा की गई है । अत वे सभी सामान्य प्रत्यय माने जाते हैं । उसमे कहा –"ज्ञानावरणादि कर्मों के प्रत्ययो का सुखपूर्वक ज्ञान कराने के लिये इन सामान्य प्रत्ययो को विवक्षित किया गया है ।" यहाँ सामान्य प्रत्ययो की पुष्टि मे जो उद्धरणरूप प्रमाण दिये गये है उनमे कहीं भी सामान्य प्रत्यय शब्द नही कहा गया है । देखो टिप्पण प्रमाण १६०–१६१ अ कि पृ ४६ ।

यहाँ हमे इतना ही कहना है कि सर्वत्र अकिंचित्कर पुस्तक की यही स्थिति है । किसी विशिष्ट प्रयोजन को सामने रखकर कहीं भी कोई कथन किया जाये तो यही स्थिति होती है । वैसे देखा जाये तो अकिंचित्कर पुस्तक मे टिप्पण के प्रमाण १५२ से लेकर १५८ तक की स्थिति यही है । उनका मिथ्यात्व बन्ध मे अकिंचित्कर है इससे

---

१७२ ध पु. १२ पृ २९० ।

१७३ ततस्तत्र तेषा कारणत्व युज्यत इति । ध पु. १२ पृ २८९ ।

कोई सम्बन्ध नही। यह तो विषयान्तर है। यहाँ तो यह बतलाना था कि मिथ्यात्व नये कर्मबन्ध मे निमित्त है या नही[१७४]।

वेदना प्रत्यय अधिकार मे पृ २७५ से पृ २८३ तक टीका मे जो सूत्रार्थ दिया गया है उसे अकिंचित्कर पुस्तक मे ध्यान मे नहीं लिया गया है[१७५]। इस प्रकार यह अकिचित्कर पुस्तक का आशय मालूम पडता है। यदि कोई शका करे कि नैगमादि तीन नयो की विवक्षा मे आठों कर्मों की जो टीका वीरसेन स्वामी ने की है वह प्रकृत मे घटित नही होती, इसलिये यहाँ द्रव्यार्थिकनय को ध्यान मे रखकर सूत्रो का मात्र उल्लेख कर दिया है ?

समाधान यह है कि सूत्रों की जो टीका वीरसेन स्वामी ने की है वह जैसे भावनिक्षेप द्रव्यार्थिकनय का विषय बन जाता है वैसे उक्त सूत्रों की टीका भी द्रव्यार्थिक नय का विषय बन जाती है[१७६]।

द्रव्यार्थिकनयो मे मुख्य नैगमनय है। उसका लक्षण है —जो है वह द्रव्य और पर्याय को छोडकर नहीं रहता। इस प्रकार जो एक को नहीं प्राप्त होता है उसको नैगमनय कहते है। किन्तु मुख्य और गौण भाव से द्रव्य और पर्याय दोनो को ग्रहण करता है उसका नाम नैगमनय है। शब्द शील, कर्म-कार्य-कारण आधार-आधेय, सहचार, मान, मेय, उन्मेय, भूत-भविष्यत-वर्तमान इत्यादिक का आश्रय कर होने वाला उपचार नैगमनय का विषय है[१७७]।

इससे हम जानते है कि वीरसेन स्वामी ने आगम के आधार पर ही उक्त सूत्रो का अर्थ किया है, क्योकि उनके लिये आगम मुख्य है। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय तो एक समय की पर्याय को ही ग्रहण करता है। उसमे कार्य-कारण भाव नही बन सकता। इसलिये स्थूल व्यजन पर्याय के माध्यम से स्थूल ऋजुसूत्र का विभाग किया गया है। उसमे आधार-आधेयभाव और कार्य-कारण भाव घटित किया जा सकता है, क्योकि उसका विषय एक तरह से नैगमनय के समान हो जाता है। इतनी विशेषता है कि वह

१७४ जदि एव तो दव्वट्ठयणएस्स तीसु वि पाणादिवादादीण।
पच्चयत्त कत्तो जुज्जदे। ण तेसु सत्तेसु णाणावरणीयबन्धुवलभादो।
णच पर्यायभेदेन वस्तुनो भेदः तदव्यतिरिक्तपर्यायाभावा सकललोकव्यवहारोच्छेप्रसगात्। ध पु. १२, पृ २८९।

१७५ ज ध भा पृ २४४ से।

१७६ ण च उजुसुदो पज्जवट्ठिए णए दव्वणिक्खेवो ण समवइ वजणपज्जायरूवेण अवट्ठियस्स वत्थुस्स अणेगेसु अत्थ विंजणपज्जाएसु सथरतरस दव्वभावुवलभादो। वजणपज्जायविसयस्स उजुसुदस्स बहुकालावट्ठाण होदिमत्तिणासकणिज्ज, अप्पिदवजणपज्जायअवट्ठाणकालस्स दव्वस्स वि वट्ट माणत्तणेण गहणादो। ज ध पु १, पृ २६३-२६४।

१७७ तत्थ णेगम-सगह-ववहार-णेसु सव्वे एदे णिक्खेवो हवति तव्विसयम्मि तब्भव-सारिच्छ-सामण्णम्हि सव्व-णिक्खेव-समवादो। कध दव्वट्ठिय-णये भाव-णिक्खेवस्स समवो ? ण, वट्टमाण-पज्जायो-वलिक्खिय दव्व भावो इदि दव्वट्ठिय-णयस्स वट्टमाणमवि आरमप्पहुडि आ उवरमादो। ध पु. १, पृ १४-१५।

पर्यायार्थिकनय के विषय को नहीं छोड़ता है। फिर भी अनेक पर्यायों को ग्रहण कर उसमे द्रव्यपना घटित किया सकता है[१७८]।

३४ द्रव्यार्थिकनय का मुख्य विषय

यह कहा जाता है कि द्रव्यार्थिकनय के विषय में द्रव्य की मुख्यता है, तो द्रव्यार्थिकनय का विषय क्या है ? यदि यह पूछा जाय तो वह तद्भवसामान्य (ऊर्ध्वतासामान्य) और सादृश्य सामान्य ये दोनों मिलकर उसके विषय बन जाते हैं[१७९] पर पर्याय को सामान्य में गर्भित कर उसका विषय बनता है। ऐसा यहाँ जानना चाहिए, अन्यथा स्थूल ऋजुसूत्रनय तथा भावनिक्षेप उसका विषय नहीं बन सकता। प्रमाण हम पहले दे आये हैं। इस प्रकार स्थूल ऋजुसूत्रनय और भावनिक्षेप की अपेक्षा तद्भव सामान्य अर्थात ऊर्ध्वता सामान्य और सादृश सामान्य द्रव्यार्थिकनय के विषय बन जाते है इसमे कोई आपत्ति नहीं आती।

३५ अनन्तानुबंधी चार सम्यग्दर्शन की कैसे चोर हैं ?

पुरुषार्थसिद्धि के १२४में श्लोक में जो यह कहा गया है कि अनन्तानुबधी चार सम्यग्दर्शन को चुराती है, इसलिये वह चोर है, सो वह ठीक ही कहा गया है, क्योंकि चोर उसे कहते हैं जो दूसरे के माल को चुराता है। वस्तुत यह माल सम्यग्दृष्टि का है। मिथ्यात्वकर्म उस पर डाका डालता है। अनन्तानुबधी चारतो उस पर डाका नहीं डाल सकता क्योंकि मिथ्यात्व कर्म के उदय में अनन्तानुबधी का उदय हो या न हो इसलिए तो मिथ्यात्व कर्म सम्यग्दर्शन पर डाका डालने वाला हुआ। मिथ्यात्व कर्म का उदय सम्यग्दर्शन को हर लेता है[१८०] अनन्तानुबधी चार सासादन गुणस्थान में कुछ काल तक सम्यग्दर्शन को रोक रखता है, क्योंकि उस समय मिथ्यात्व का वहां उदय नहीं है। इसलिये वह अनन्तानुबधी चार सम्यक्त्व को चुराने वाली हुई। वह चोर तो है पर मिथ्यात्व के समान सर्वस्व हरनेवाली नहीं। जैसे मिथ्यात्व अनादिकाल से सम्यक्त्व का अपहरण करके बैठा है वैसे अनन्तानुबधी चार में कुछ काल तक ही अर्थात् सासादन गुणस्थान में सम्यक्त्व का अपहरण कर सकती है, चिरकाल तक नहीं, ऐसा यहाँ समझना चाहिए। अतः अनन्तानुबंधी मिथ्यात्व की जननी तो नहीं क्योंकि अनन्तानुबधी चार अल्प पाप रूप है। अत उसका प्रथम क्षय होता है[१८१] इसलिये यहाँ जो ११८ न. का प्रमाण दिया है वह निरर्थक है। वह निरर्थक इसलिये

---

१७८ अप्पिदपज्जाएण वट्टमाणत्तमावण्णस्स वत्थुस्स अणप्पिद पज्जाएसु दव्वविरोहमावादो वा अत्थि उजुसुदणयविसए दव्वमिदि। ध पु १२, पृ २९०।

१७९ तव्विरायम्मि तब्भव-सारिच्छ-सामण्णम्हि सव्व-णिक्खेव सम्भवादो। ध. पु १, पृ १४।

१८० न हि सम्यक्त्वसम किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि। श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम ॥ रत्न श्रा गा ३४।

१८१ अविसजोइदाणताणुबधि चउक्कस्स वेदयसम्माइट्ठिस्स कसायोवसामणाणिबंधणदसणमोहोवसामणादिकिरियासु पवुत्तीए असंभवादो। ज. ध. पु. १३० पृ १६६-१६७।

है कि मिथ्यात्व का बाद में क्षय क्यों होता है इसका अकिंचित्कर पुस्तक मे विचार ही नहीं किया गया है।

उपसहार स्वरूप ऐसा समझना चाहिए कि मिथ्यात्वकर्म जैसे आप्त, आगम और पदार्थों में विपरीत श्रद्धा को उत्पन्न करता है, वैसा अनन्तानुबंधी चार नहीं कर सकती। वह स्वरूपाचरण चारित्र का सम्यक्त्वाचरण चारित्र का तो घात कर सकती पर मिथ्यात्व के उदय के बिना नहीं। मिथ्यात्व का बल पाकर ही वह स्वरूपाचरण चारित्र का घात कर सकती है, क्योंकि वह चारित्र मोहनीय की प्रकृति है, दर्शनमोहनीय की प्रकृति नहीं। फिर भी दूसरा गुणस्थान इसका अपवाद है।

शका —सासादन गुणस्थान मे भी विपरीताभिनिवेश तो होता है, किन्तु वहाँ मिथ्यात्व के उदय का बल नहीं है ?

समाधान :—अनन्तानुबधी चार चारित्र मोहनीय की प्रकृतियाँ है वे स्वरूपाचरण चारित्र अथवा सम्यक्त्वाचरण चारित्र को नहीं होने देती, इसीलिये पर्यायान्तर से उसे भी सम्यकत्व का घात करने वाली प्रकृति कही गयी है। पर दूसरे गुणस्थान मे मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा न होने से मिथ्यात्व का बल नहीं है। इससे मालूम पडता है कि जैसा मिथ्यात्व गुणस्थान में विपरीताभिनिवेश होता है वैसा दूसरे गुणस्थान मे नहीं होता[१८२]। इसीलिए अनन्तानुबधी को द्विस्वभावी[१८३] स्वीकार कर लिया है। अनन्तानुबधी द्विस्वभावी है यह कैसे जाना जाय ? यदि यह शंका उपस्थित की जाये तो कहना पडता है कि उसका निर्णय मूल आगम से तो नहीं होता, पर तर्क के बल पर टीकाकारों को निर्णय लेना पडा है क्योंकि सम्यक्त्वाचरण चारित्र का वह घात करती है और वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र सम्यक्त्व का अविनाभावी है। ये दोनों एक साथ होते है। किन्तु मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा तो दूसरे, गुणस्थान में नही है पर अनन्तानुबधी की उदय-उदीरणा है और वह सम्यक्त्वाचरणचारित्र का घात करती है, इसीलिए उसे द्विस्वभावी कहा गया है, क्योंकि वही सम्यक्त्वाचरण चारित्र सम्यकत्व का अविनाभावी है। जिसके सम्यक्त्व के आठ अगों में अमूढ दृष्टि अंग होता है वह ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र और सयमाचरणचारित्र के महत्व को स्वीकार करता है[१८४]। यदि सयमाचरण चारित्र न हो तो उसके सम्यक्त्वाचरण चारित्र तो होना ही चाहिये। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनन्तानुबन्धी को द्विस्वभावी क्यों कहा—इसका समाधान मिल जाता है।

---

१८२ दसण अत्तागम-पदत्थेसु रुई पच्चो सद्धा फोसणमिदि एयट्ठो। तमोहेदिविवरीय कुणदि त्ति दसणमोहणीय। ध. पु. ६. पृ ३८।

१८३ अपि तु मिथ्यात्वकर्मोदयजनितविपरीताभिनिवेशाभावात न तस्य मिथ्यादृष्टि व्यपदेशः, किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते। ध. पु. १. पृ. १६४ तथा अनन्तानुबन्धिना द्विस्वभावत्वप्रतिपादनफलत्वात्। ध. पु. १. पृ. १६५।

१८४. एएतिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया। तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविह चारित्तं॥४॥ जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढम सम्मत्तचरणचारित्त। बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि॥५॥ सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ वि सुपसिद्धा। णाणी अमूढदिट्ठि अचिरे पावंति णिव्वाणं॥६॥ पृ ७६-८० तथा ८५, अष्ट पा., चा. पा. भाषावचनिका सहित।

मिथ्यात्व के समान अनन्तानुबधी को नोकर्म कर्मकाण्ड मे षटअनायतन आदि क्यों कहे ? उसका समाधान भी पहले जो कथन कर आये है उससे हो जाता है। जब अनन्तानुबधी कषाय होने के कारण वह स्वरूपाचरण सम्यक्त्वाचरण चारित्र का प्रतिबन्ध करती है और वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अविनाभावी है तो उसका घातक वही नोकर्म होगे जो मिथ्यात्व के नोकर्म है इसमे कोई सदेह नही, क्योकि एक अपवाद को छोडकर मिथ्यात्व के उदय के साथ अनन्तानुबधी का भी उदय होता है। मात्र दूसरा गुणस्थान उसका अपवाद है। वहाँ मिथ्यात्व का उदय नहीं होता और अनन्तानुबधी मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है। इसीलिए दूसरे गुणस्थान मे विपरीताभिनिवेश कहा है।

धवला १४ वी पुस्तक मे विपाकप्रत्ययिक भाव गिनाये गये है इसलिये मोह की अपेक्षा मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी विपाकप्रत्ययिक गिनाते समय उन दोनों को सामान्य से मोह मे परिगणित कर लिये गये है, तो इसमे क्या आश्चर्य है। मात्र राग और द्वेष मे मिथ्यात्व को छोड दिया गया। क्योकि मिथ्यात्व के उदय मे राग भी होता है और द्वेष भी। इसलिये मात्र द्वेषरूप प्रकृतियो के उदय मे तथा रागरूप प्रकृतियो के उदय मे परिगणित नही किया गया। तथा अनन्तानुबधी चार को दोनो मे विभाजित कर दिया गया। मोह सामान्य के उदय मे २८ प्रकृतियो का उदयबनजाताहै, मोह विशेष के उदयमे नही। यदि अकिंचित्कर पुस्तक मे यह खुलासा मिल जाता तो पाठको को भ्रम नही होता।

३६ विपरीताभिनिवेश का आशय :-

अनन्तानुबन्धी के उदय से सम्यक्त्वाचरण चारित्र का घात होता है। उसे ही यहाँ विपरीताभिनिवेश कहा गया है, क्योकि विपरीताभिनिवेश का सद्‌भाव कहो या सम्यक्त्वाचरणचारित्रका घात, ये दोनो यहाँ पर्यायवाची बन गये है, इसीलिये यहाँ अनन्तानुबधी को द्विस्वभावी मान लिया गया है।

यदि हम पूछे कि द्विस्वभावी का अर्थ क्या है ? उससे सम्यक्त्व के साथ कौन से चारित्र का घात होता है ? द्विस्वभावी का अर्थ तो हम ऊपर स्पष्ट कर ही चुके हैं। अब चारित्र सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि देशचारित्र का घात करने वाली प्रकृति तो अप्रत्याख्यानावरण कषाय है। अनन्तानुबन्धी के उदय से तो देशचारित्र का घात होता नही। फिर कौन से चारित्र का घात अनन्तानुबन्धी का उदय करता है ? तो कहना पडेगा कि सम्यक्त्वाचरण चारित्र का घात उसके उदय से होता है। आगम के जानकार उसे ही स्वरूपाचरण चारित्र कहते है। उसे ही आत्मा का अनुभव कहते है, क्योकि वह आत्मा का अनुभवस्वरूपाचरण चारित्रस्वरूप होता है। इसीलिये अविरत सम्यग्दृष्टि के सम्यग्दर्शनादि तीनो की एकता बन जाती है। अविरत सम्यग्दृष्टि के सयमाचरण चारित्र नहीं होता, फिर भी वह मोक्षमार्गी हो गया है क्योकि उसके

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो होता ही है, और उसके सम्यक्त्वाचरण चारित्र भी होता है। उसी का नाम ज्ञानानुभूति है[१८५]। ज्ञानानुभूति का नाम ही आत्मानुभूति है। उसी को समय प्राभृत के कलश काव्य मे इन शब्दो द्वारा व्यक्त किया गया है –

आत्मा ज्ञानं स्वय ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ ६२ ॥

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघन समन्तात् ॥ १३ ॥

अर्थ –आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह स्वय ज्ञान ही है। ज्ञान से अन्य किसको करे? किसी को नही करता। परभाव का कर्ता आत्मा है, यह कहना व्यवहारीजनों का मोह (अज्ञान) है ॥ ६२ ॥

शुद्धनय के विषयस्वरूप जो आत्मा की अनुभूति है वही ज्ञान की अनुभूति है। ऐसा अच्छी तरह जानकर तथा आत्मा मे आत्मा को निश्चल कर सदा सब तरफ एक आत्मा ही है इस प्रकार देखना चाहिए ॥ १३ ॥

यह केवल आत्मख्याति टीका का आशय नहीं है, तात्पर्यवृति टीका का भी यही अभिप्राय है[१८६]। इसलिये अनन्तानुबधी चार चारित्रमोहनीय की प्रकृति होने के कारण वह स्वरूप का अनुभव नहीं होने देती। उसी को सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अभाव कहते है। विसयोजना करनेवाला जीव यदि सीधा मिथ्यात्व मे आता है तो उसके मिथ्यात्व का उदय होने पर भी एक आवलि काल तक अनन्तानुबधी का उदय नही होता। उस समय मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व का उदय होने से ही सम्यक्त्व का अभाव रहता है, इसलिये स्वरूपानुभव का प्रश्न ही नही उठता। यदि वह सासादन गुणस्थान मे आता है तो अनन्तानुबधी का उदय होने पर भी मिथ्यात्व का अभाव होने से आत्मानुभूति के बिना सम्यक्त्व का सद्भाव होना चाहिए ? पर आगम कहता है कि चौथे आदि गुणस्थानो से गिरकर सासादन गुणस्थान मे आते समय उसके सम्यक्त्व का नाश हो जाता है[१८७]। इसलिये उसके अनन्तानुबन्धी के उदय के होने पर मिथ्यात्व का उदय न होने पर भी जब सम्यक्त्व नही होता तो आत्मानुभूति का प्रश्न ही नही उठता, क्योंकि सम्यक्तव के साथ ही आत्मानुभूति होती है, उसके बिना नहीं।

शका –सम्यक्त्व के काल मे भी आत्मानुभूति का कोई नियम नही है वह होती भी है और नहीं भी होती। आप कहते है सम्यक्त्व के साथ आत्मानुभूति होती है सो यह बात कैसे बने ?

---

१८५. सद्दहमाणो अत्थे असजदो वा ण णिव्वादि ॥२३७॥ किंच सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितवशदैकज्ञानाकारमात्मनश्रद्दधानोऽप्यनुभवन्नपि यदि। अ च टी। प्र सा गा २३७।

१८६ अ ख्या टीका तथा तात्पर्य वृ त्ति टी गा. १३–१६ ।

१८७ णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥ गो जी गा २० ।

समाधान —सम्यक्त्व रहे और उपयोग आत्मा की ओर न होकर ससारी कामो की ओर हो तो सम्यक्त्व के रहने पर भी आत्मानुभूति नहीं होती, उसका उपयोग ससारी कामो मे लगा रहता है, किन्तु वह ज्ञान–वैराग्य सम्पन्न अवश्य होता है[१८८]। सम्यक्त्वी के अनन्तानुबधी का अभाव अवश्य ही रहता है। इसलिये ससार के कामो मे उतनी प्रगाढता नही होती जितनी मिथ्यादृष्टि के होती है। सम्यक्त्व के काल मे अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के रहते हुए भी शेष प्रत्याख्यानावरण आदि कषायो का उदय अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। यह उपयोग की विशेषता है कि कषायो का उदय रहे पर उसको अनुभवे नही[१८९]। कभी-कभी यह स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी बनती है। विशेषरूप से सम्यक्त्व की प्राप्ति के सन्मुख होने पर तो अवश्य बनती है। उस अवस्था मे मिथ्यात्व का अव्यक्त उदय रहता है, अन्यथा आगे के गुणस्थनो की प्राप्ति नही बन सकती। मिथ्यात्व का अति मन्द उदय कहो या अव्यक्त उदय कहो दोनो का अर्थ एक है।

३७. रात्रि भोजन और महाव्रती साधु :-

यह बात सही है कि महाव्रती साधु रात्रि भोजन का पहले ही त्याग कर आया है इसलिये महाव्रती मुनि के बुद्धिपूर्वक रात्रि भोजन नही बन सकता। यह बात वह जानताहै कि, मेरे अन्तरग और बहिरग रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग है। अतरग से तो वैसी कषाय नहीं होती कि क्षुधा की निवृत्ति के लिये मै भोजन ग्रहण करू और बहिरग से उसने गुरू की साक्षीपूर्वक वैसा व्रत लिया है, यह सही है। किन्तु अकिंचित्कर पुस्तक पृ ४९ मे जो यह लिखा है कि अब अगर देखा जाये तो जो महाव्रती-मुनि महाराज है, उनका तो इन सभी क्रियाओं का मन वचन, काय से अतरग-बहिरग रूप से सर्वथा परित्याग है। फिर उनको तो आठो कर्मों का बन्ध नहीं होगा। इसीलिये प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान मैथुन परिग्रह और रात्रि भोजन आदि इन प्रत्ययो से ज्ञानावरणादि कर्मों का बन्ध नही होता, क्योकि इनके बिना भी अप्रमत्तसयतादि गुणस्थानवर्ती जीवो के भी इनका बन्ध नहीं होता, क्योकि इनके बिना भी अप्रमत्तसयतादि गुणस्थानवर्ती जीवो के भी इनका बन्ध होता है। तब यहाँ समाधान दिया गया है कि वह प्रत्यय व्यवस्था तो प्रकृत मे नैगम सग्रह और व्यवहारनयो की अपेक्षा की गयी है अत ये सभी सामान्य माने जाते है।

यह अकिंचित्कर पुस्तक का कथन है। इसलिये इस पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। फिर भी प्राणातिपात आदि प्रत्यय बन्ध के कारण है या नहीं, इन पर हम पहले ही विचार कर आये है। यहाँ तो मात्र रात्रि-भोजन अबुद्धिपूर्वक महाव्रती-मुनि के बनता है या नहीं यह देखना है।

---

१८८ सम्यग्दृष्टेर्भवति नियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः ॥ स सा क श्लोक १३६।

१८९ अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवतः।
बु द्धिपू र्व व्यपे क्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात् ॥९१॥ आ मी श्लोक।

आगम मे नैगमादि नयो से महाव्रती–मुनियों के ५ भेद माने गये है–पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। इनको आश्रय कर महाव्रती का अर्थ तत्वार्थराजवार्त्तिक मे इस प्रकार किया है कि, सम्यग्दर्शन के साथ जिसके नग्नता है उसे आगम मे निर्ग्रन्थ माना गया है[१६०]। केवल नग्नता हो तो उसे निर्ग्रन्थ नही माना गया है। इसी लक्षण को ध्यान मे रखकर उक्त पाँचो निर्ग्रन्थ माने गये हैं। वे शिष्य आदि परिग्रह से जुदे नहीं है, अन्तरग और बहिरग से जो परिग्रहरहित हैं, जो कथचित् उत्तरगुण की विराधना से युक्त है वे मुनि प्रतिसेवना कुशील है। इसी प्रकार पुलाक भी प्रतिसेवना से युक्त होते है, वे पाँच मूलगुणों का और रात्रिभोजन के त्याग का पर की बलजवरी से किसी एक नियम को तोड देते है[१६१]।

इस प्रकार हम देखते है कि, महाव्रती साधु के भी रात्रि भोजन बन जाता है। वह पर की बलजवरी से बने, पर बन तो जाता है।

इसी बात को भगवती आराधना मे भी कहा है –क्षपक रोग के वशतै, विलाप करने लगि जाय–प्रलाप करने लगि जाय, अथवा अयोग्यवचन कहै, अथवा गुणश्रेणीतै उतरने की बुद्धि कू प्राप्त भया क्षपक, छठा रात्रिभोजन कू चाहै, तथा द्वितीय भोजन जो जलपान ताकू याचै तथा प्रथम जो भोजन ताकू याचने लगि जाय आदि –पृ ४८२

अहो बडा अनर्थ है ! जो, मै त्रैलोक्य मे दुर्लभ ऐसा सयम अगीकार करकै अर अकाल मे भोजनपान की इच्छा करू हूँ ! अवार हमारे सन्यास का अवसर मै समस्त आहारपान का त्याग का अवसर है, मै समस्तसघ को साक्षी करिकै समस्त च्यारि प्रकार का आहार का त्याग किया है (गा १५०८)।

३८ सब प्रत्यय निमित्त मात्र है कोई सामान्य नहीं और न कोई विशेष :-

अकिचित्कर पुस्तक मे पृ ५० पर लिखा है कि "विशेष प्रत्यय की चर्चा करते हुए ऋजुसूत्रनयके आश्रित इनसे अलग ही प्रत्यय कहे गये है, कारण कि, वे साक्षात बन्ध की नियामकता से सम्बन्ध रखते है। ऋजुसूत्रनय की विवक्षा मे दो ही प्रत्यय कहेगये है –कषाय और योग। योग को प्रकृति और प्रदेश बन्ध का तथा कषाय को स्थिति और अनुभाग बन्ध का नियामक प्रत्यय कहा गया है।"

अब इस पर विचार किया जाता है। यह तो हम पहले ही प्रमाण सहित लिख आये है कि कार्य-कारणभाव नैगमनय का विषय है। सग्रहनय और व्यवहारनय को नैगमनय के साथ ग्रहण कर लिया गया है, क्योकि ये तीनो नय द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कथन करते है। अब रहा पर्यायार्थिकनय का एक भेद ऋजुसूत्रनय तो, सूक्ष्म

---

१६० दृष्ट्या सह यत्र रूप तत्र निर्ग्रन्थव्यपदेशः। त वा अ ६, सू ४६।

१६१ प्रतिसेवना-पचाना मूलगुणाना रात्रिभोजन वर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतम प्रतिसेवमानः पुलाको भवति। स सि सू ४७। त वा सू ४७।

ऋजुसूत्रनय मात्र एक समय की पर्याय को ही ग्रहण करता है, इसलिये उसमे कार्य-कारण भाव नही बन सकता, इसीलिये ऋजुसूत्रनय के सूक्ष्म और स्थूल दो भेद करके स्थूल ऋजुसूत्रनय मे अन्वय रूप द्रव्यपने की अपेक्षा कार्यकारण भाव घटित किया गया है[१६२] । यह व्यवस्था द्रव्यार्थिकनय के तीनो भेदो मे और स्थूल ऋजुसूत्रनय मे बन जाती है क्योकि द्रव्य और पर्याय को मुख्यकर इन नयो का विषय घटित किया गया है । यहाँ द्रव्यार्थिक नयों मे व्यतिरेक रूप से पर्याय को भी ले लिया है[१६३] । इसलिये इनका कथन करनेवाले सूत्रो की टीका मे यह विषय स्पष्ट किया गया है । सूत्रों का कथन सक्षिप्त होता है, अत उनके विषय को टीका मे स्पष्टीकरण के अभिप्राय से दर्शाया जाता है । अन्यथा भावनिक्षेप[१६४] द्रव्यार्थिकनयो का विषय नहीं बन सकता । भावनिक्षेप यद्यपि पर्यायार्थिक नय का विषय है, फिरभीपर्यायो के साथ द्रव्य का अन्वय होने से भावनिक्षेप को द्रव्यार्थिक नय का विषय बनाकर स्वीकार किया गया है ।

शका —सन्मतितर्क सूत्र मे तो भावनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयो का विषय नही कहा है, इसलिये इस कथन का सन्मतितर्क सूत्र के साथ विरोध कैसे नहीं होता ?

समाधान —सन्मतितर्क सूत्र मे भावनिक्षेप को एक समय की पर्याय रूप क्षणक्षयी पर्याय का विषय स्वीकार किया गया है, इसलिये उस कथन का इस कथन के साथ विरोध नहीं आता, क्योकि भावनिक्षेप के विषयरूप से अनेक पर्याय सहित द्रव्य को भी स्वीकार कर लिया गया है[१६५] ।

इसलिये षटखण्डागम और कषायप्राभृत आगम का मनन करके यदि अकिंचित्कर पुस्तक लिखी जाती तो उससे समाज का और उसके विद्वत् वर्ग का बहुत उपकार होता । व्याख्यान करना अन्य बात है और आगम के अनुसार विषय को स्पष्ट करना अन्य बात है । यह टिप्पणि बुद्धिपूर्वक करनी पडती है, क्योकि हमारे सामने तो अकिंचित्कर पुस्तक है, उसका लेखक नही ।

अत यहाँ यह स्पष्ट रूप से समझना चाहिये कि आगम के सामने न कोई सामान्य प्रत्यय है और न कोई विशेष प्रत्यय है । सब प्रत्यय समान है, इसीलिये आगम मे ऐसा भेद भी देखने को नहीं मिलता ।

आगम मे प्रत्ययों के आधार से कर्म और नोकर्म की जो व्यवस्था की गयी है, वहाँ यह विचार हो सकताहै कि कौन प्रत्यय कर्म के उदय और उदीरणारूप है और कौन

---

१६२ आदौ एव बन्धकारणनिर्देशोऽनुष्ठेयः । कार्य-कारणयोश्च पूर्वापरभावात् । पूर्वकारण वाच्य पश्चात् कार्यमुच्यते । त वा उत्था सू ? की अ, ८ सू ।

१६३ कधमुज्जुसुदे पज्जवट्ठिए दव्वणिक्खेवो त्ति ? ण तत्थ वट्टमाणसमयाणतगुण णिणाद-एग-दव्वसभवादो । ध पु १, पृ १६ ।

१६४ तत्थ भावम गल णाम, वर्त मानपर्या योपलक्षित द्रव्य भावः । ध पु १, पृ २६ ।

१६५, अणेण सम्मइसुत्तेण सह कधमिद वक्खाणण विरुज्झदे ? इदि ण तत्थ पज्जा-पज्जायिस्स लक्खण-क्खीणो भावब्भुवगमादो । ध पु १, पृ १५ ।

प्रत्यय कर्म के उदय और उदीरणा न होकर उनसे बाह्य है । जो बाह्य प्रत्यय हैं उनकी गणना ही नोकर्म प्रत्ययों मे की जाती है या की गई है । वे बाह्य प्रत्यय जीव के कार्य के अविनाभावी नहीं हैं । जैसे घट की उत्पत्ति मे दण्ड, चक्र और पौरूषेय प्रयत्न अवश्यभावी माना जाता था और मशीनयुग हो जाने से ये दण्ड चक्रादि नोकर्म हो या न हो तो भी घट का निर्माण हो जाता है । मशीन ही घट बना देती है । उनमे पौरूषेय प्रयत्न अवश्यभावी है, क्योंकि मशीन उनको निमित्त करके ही यह काम कर सकती है ।

इसलिये किन्हीं नोकर्मों का होना अवश्यभावी नहीं । देखो जो अनादिकाल से निगोद पर्याय मे है उनके पर निमित्त के बिना ही मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा बनी रहती है । उसमे परोपदेश की आवश्यकता नही पड़ती । पर उनके मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा होना आवश्क है । वैसे तो ऐसे जीवो के मिथ्यात्व के साथ अनन्तानुबन्धी की उदय-उदीरणा अवश्य होती है । जो सम्यक्त्व को प्राप्त कर अनन्तानुबधी की विसयोजना कर चुके हैं, वे यदि परिणामो के निमित्त से द्वितीयादि गुणस्थानो को प्राप्त होते है तो उनके थोड़े से समय के लिये मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा न होकर अनन्तानुबन्धी की उदय-उदीरणा गुणधरआचार्य और यतिवृषभ आचार्य के अभिप्राय से बन जाती है । यदि षटखण्डागम के अभिप्राय से देखा जाये तो ऐसा जीव सीधा मिथ्यात्व मे आता है । उसके एक आवलिकाल तक मिथ्यात्व की उदय-उदीरणा नही होती[१६६] ।यह आगम का नियम है । यदि कोई कहे कि वह चौथे गुणस्थान से गिरता है तो किस बाह्य निमित्त के मिलने से गिरता है ? तो कहना होगा कि यदि उपशम सम्यग्दृष्टि है तो वह काल पूरा हो जाने के कारण गिरता है, इसलिये काल निमित्त हो जाता है तथा वेदक सम्यग्दृष्टि परिणामों के निमित्त से गिरता है ।

यदि वह जीव अजानमान गुरू के निमित्त से अन्यथा श्रद्धान कर लेता है तो गुरू या अनायतन आदि उसके निमित्त हो जाते हैं ।[१६७] अनायतन तब निमित्त होता है जब कि उसकी प्रशसा या स्तुति आदि मन से की जाती है । अतत्व का जानकार गुरू और अनायतन आदि अन्यथा श्रद्धान मे निमित्त होते है और नहीं भी होते । उस को निमित्त कर कार्य हुआ तो अविनाभावी निमित्त होते है । और उसको निमित्त कर कार्य नहीं हुआ तो अविनाभावी निमित्त नहीं होते ।

कर्म के उदय के साथ यह व्यवस्था नहीं बनती है । वे कार्य के अविनाभावी अवश्य ही होते हैं । मिथ्यात्व के उदय-उदीरणा का कार्य क्या है ? यदि यह पूछा जाय तो कहना होगा कि मुख्यता से अतत्व का श्रद्धान करना-कराना मिथ्यात्व की

---

१६६ अणसजोजिदसम्मे मिच्छ पत्ते ण आवलि त्ति अण । ४०८ । गो क गा ४७८ ।

१६७ सम्माइट्ठी जीवोउवइट्ठ पवयण णियमसा दु सद्दहदि ॥
सद्दहदि असब्भाव अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ गो जी गा २७ तथा ध पु १, पृ १७३ ।
आयदणाणायदण सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्म । गो क गा ७४
अणणोकम्म मिच्छतायदणादी दु होदि सेसाण ॥ गा –७५ गो क ।

उदय-उदीरणा का कार्य है । अविरति का कार्य क्या है ? तो कहना होगा कि अतरग मे गुरू की साक्षी के साथ व्रतो को नहीं ग्रहण करना कार्य है ? कषायो का कार्य क्या है, तो कहना होगा कि राग-द्वेषरूप कार्य को उत्पन्न करना उनका कार्य है । इसी प्रकार अन्य के कार्य समझ लेना चाहिए ।

ये सब कार्य उस-उस पद को प्राप्त होने के साथ मुख्यता से होते है । अकिचित्कर पुस्तक इन कार्यों को मुख्यता नही देता तो अकिचित्कर पुस्तक को बताना चाहिये कि मिथ्यात्व अविरतादि का कार्य क्या है ? वह इस विषय मे मौनरहती है जैसा कि इस पुस्तक के अवलोकन से जान पडता है कि, दूसरे विद्वानो ने जो यह आरोप किया है कि अकिचित्कर पुस्तक पर यह आरोप सही है कि एक तरह से "अकिचित्कर पुस्तक द्वारा मिथ्यात्व का ही प्रचार किया जा रहा है ।"

इस प्रकार हम देखते है कि सब प्रत्यय समान है उनमे न कोई सामान्य प्रत्यय है और न कोई विशेष प्रत्यय है । यह भेद नोकर्म प्रत्ययो मे किया जाता सकता है मिथ्यात्व आदि कर्म के उदय-उदीरणा से होने वाले प्रत्ययो मे नही । इस प्रकार का भेद आचार्यों ने भी किया है । यह भेद अकिचित्कर पुस्तक मे ही देखने को मिला है । इस प्रकार विचार करने पर मालूम पडता है कि उदय-उदीरणा रूप सब प्रत्यय समान है ।

३६ अन्वय व्यतिरेक की अपेक्षा विचार

अकिचित्कर पुस्तक के पृ ५३ पर लिखा है कि "इस तरह मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व के उदय सेअन्वय-व्यतिरेक रखने वाली मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियो को भी मिथ्यात्व नहीं बाधता । वहाँ मात्र उसका उदय ही निमित्त होता है । इस तरह यह स्पष्ट रूप से समझ सकते है कि दर्शनमोहनीय का सारा का सारा परिवार ही बन्ध व्यवस्था मे अपना कोई भी हाथ नही रखता ।"

अकिचित्कर पु पृ ५२ मे लिखा है कि "इस तरह तीनो ही प्रकृतियाँ अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप जीव मे भाव पैदा करती है । इसीलिये इन्हे भावात्मक कहा जाता है ।"

अब अकिचित्कर पुस्तक के इस कथन पर क्रम से विचार किया जाता है । पहले हम अन्वय व्यतिरेक के आधार पर विचार करेगे । अकिचित्कर पुस्तक मे यह तो स्वीकार कर लिया है कि "मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियो को भी मिथ्यात्व नही बाधता यहाँ उसका उदय ही निमित्त होता है ।"

यह विचित्र बात (अकि पु) ही देखने को मिली है कि कषाय का उदय ही बन्ध मे निमित्त होता है । तात्विक दृष्टि से देखा जाये तो कोई भी पर वस्तु अन्य के कार्य मे निमित्त नहीं होती है । कार्य तो अपने काल मे स्वय होता है, यह आगम की मान्यता है[१६८] । जैसे घट कार्य मे कुम्भकार आदि बाह्य पदार्थ निमित्त होते है, घट कार्य मे तो

१६८ प्र सा गा १६ १०२ । पचास्तिकाय गा ६२ ।

मिट्टी अपने परिणाम स्वभाव के द्वारा स्वय घट रूप मे परिणम जाती है[१९९] । पर जहाँ बाह्य निमित्त को कर्ता आदि मानकर कथन किया जाता है वहाँ निमित्त को कार्य का कर्ता कहा जाता है । यह व्यवस्था असद्भूत व्यवहारनय की है ।

पर अकिंचित्कर पुस्तक के उक्त उद्धरण से यह जान पड़ता है कि वह ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा कथन को ही सम्यक् मानता है । नैगम, सग्रह और व्यवहारनय के कथन को सम्यक् नहीं मानना चाहता । जबकि वेदना प्रत्यय अनुयोग द्वार मे सातों नयो की अपेक्षा कथन किया गया है । वहाँ भी यह नही लिखा कि ऋजुसूत्रनय का ही कथन सम्यक् है, उक्त तीन नयो का कथन सम्यक् नहीं है । वहाँ भी अनेक पर्यायों मे द्रव्यपने की व्यवस्था कर पर्याय सहित द्रव्य को कार्यकारी माना गया है । कथन किसी अपेक्षा करो तो उस अपेक्षा से वह सम्यक् माना जाता है । अपेक्षा के बिना एकान्त से कथन करना मिथ्या माना जाता है । अपेक्षा से कथन कहो या नय विवक्षा से कथन कहो, दोनो का अर्थ नय अपेक्षा से एक है । अनेकान्त ही उसकी ध्वजा है[२००] । नयविवक्षा से किया गया कथन सम्यक् एकान्त माना गया है यह आगम की व्यवस्था है । इसीलिये मूल ग्रन्थकारों ने मिथ्यात्व को बन्ध के हेतुओं मे गिनाया है ।

यदि कहो कि तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय मे दूसरे सूत्र की रचना करते समय "कषायत्वात्" पद देकर मिथ्यात्व को छोड दिया गया है और कषाय को मुख्यता क्यो दी गई । यदि मिथ्यात्व बन्ध का हेतु है तो "स मिथ्यात्वात्" यह कहना चाहिये था । "स कषायत्वात्" यह क्यो कहा गया ? इससे मालूम पडता है कि मिथ्यात्व को यहाँ बन्ध के हेतुओं मे जो प्रमुखता दी गई है वह मिथ्यात्व गुणस्थान को ध्यान मे रखकर दी गई है । अन्यथा मिथ्यात्व बन्ध का कारण नहीं । कषाय और योग ही बन्ध का कारण है —यह प्रश्न है ।

उसका समाधान यह है कि वेदनाप्रत्यय अनुयोग द्वार मे जो कथन किया गया है वह सात नयो की अपेक्षा कथन किया है । उसमे तो नैगम, सग्रह और व्यवहारनय से मिथ्यात्व को भी बन्ध के हेतुओं मे लिया है ऋजुसूत्रनय से कषाय और योग को प्रमुखता से बन्ध के हेतुओं मे लिया है । शेष तीन नयो से बन्ध के हेतु को अवक्तव्य कहा है ।

इससे मालूम पडता है कि केवल मिथ्यात्व गुणस्थान को ग्रहण करने के लिए मिथ्यात्व को बन्ध के हेतुओं मे नहीं गिनाया है, अपितु नैगमादि तीन नयो से भी मिथ्यात्व को बन्ध के हेतुओं मे गिनाया है ।

वैसे देखा जाये तो न केवल अन्वय ही (पर्याय रहित द्रव्य ही) बन्ध का कारण है और न केवल पर्याय ही बन्ध का कारण है किन्तु गुण-पर्यायवाला द्रव्य ही बन्ध का कारण है, क्योंकि कार्य के अनुरूप ही कारण होना चाहिए । कारण एकान्तरूप हो

---

१९९ स प्र ३७२ गा ।

२०० त वा अ १ सूत्र ६ की टीका ।

और कार्य अनेकान्तरूप हो यह नही हो सकता। इसीलिये कारण का लक्षण करते हुए स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे उपादान-उपादेय कारण कार्य की दृष्टि से कहा है।

पुव्वपरिणामजुत्त कारण भावेण वट्ठदे दव्व।
उत्तरपरिणाम जुदं त चि ज कज्ज हवे णि मया॥

पूर्व परिणाम से युक्त द्रव्य कारण है और उत्तर परिणाम से युक्त वही द्रव्य नियम से कार्य है।

अकिचित्कर पुस्तक में परिणामस्वभाव होने से जैसे मिथ्यात्व को भावात्मक मानकर बन्ध मे उसकी कारणता को स्वीकार नहीं किया है, वैसे ही कषाय को भी परिणामस्वरूप होने से भावात्मक मानकर बन्ध मे उसको कारण नहीं माना जाना चाहिये। दोनो स्थानों पर कथन समान है। इस तरह कषाय बन्ध का हेतु न रहने से अविरत और प्रमाद भी कषाय मे गर्भित हो जाने के कारण बन्ध के हेतु नहीं ठहरते। मात्र योग शेष रहता है, वह किसी अपेक्षा से बन्ध का हेतु रह जावे।

इस प्रकार तत्वार्थसूत्र के ८वे अध्याय के १२ सख्यक सूत्र तो समाप्त हो जाते है[२०१]। उनकी रचना गृद्धपिच्छ आचार्य ने व्यर्थ मे की है ? यदि अकिचित्कर पुस्तक कहे कि कषाय को तो बन्ध का हेतु होना चाहिए अन्यथा वर्तमान मे स्थिति और अनुभाग का बन्ध कैसे होगा ? तो हम कहते है कि मिथ्यात्व भी बन्ध का हेतु होना चाहिए, क्योकि उसके बिना बन्ध का हेतु द्रव्यार्थिकनय से कौन होगा ? इस प्रकार पॉचो ही बध के हेतु सिद्ध हो जाते है। और मिथ्यात्व बन्ध का हेतु सिद्ध होने पर उससे मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियो का बन्ध सिद्ध हो जाता है यही तो अन्वय-व्यतिरेक है, क्योंकि मिथ्यात्व के रहने पर उक्त मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतयों का बन्ध होता है और मिथ्यात्व के नही रहने पर उनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। वहाँ अन्य प्रकृतियों का जो बन्ध होता है वह केवल मिथ्यात्व से नहीं होता। वहाँ जो अन्य कारण रहते है, बन्ध मे उनकी मुख्यता हो जाती है। इससे मिथ्यात्व के साथ १६ प्रकृतियों का बन्ध मे जो अन्वय-व्यतिरेक आगम मे स्वीकार किया है उसमे कोई अन्तर नहीं पडता।

४० अनुदय का अर्थ ईषत् उदय नहीं है :-

अकिचित्कर पुस्तक मे यह सम्भावना व्यक्त की गयी है कि "ईषत् उदय को ही अनुदय कहा गया हो" यह अकिचित्कर पुस्तक का हेडिग है किन्तु यदि ऐसा मान

२०१ ते एते पच बन्ध हेतवः समस्ता व्यस्ताश्च भवन्ति। तद्यथा-मिथ्यादृष्टेः पचापि समुदिता बन्धहेतवो भवन्ति। स सि, अ ८ सू। पृ २६२।
मिथ्यादर्शनदि हेत्वभाव ----अ १०, सू २ पृ ३६८।
मिच्छत्तपच्चओ खलु बधो उवसामगस्स बोद्धव्वो।
उवसते आसाणो तेणा पर होइ भजियव्वो॥१०१॥
क पा सू पृ १३९ प सुमेरचद्र दिवाकर सम्पादक-अनुवादक।

लिया जाये तो उदय प्रकरण मे अनुदय का अर्थ ईषत् उदय करना पड़ेगा। अकिंचित्कर पुस्तक तथा अनन्तानुबन्धी चार इसके समर्थन मे "अनुदराकन्या " शब्द को प्रस्तुत करता है।

यदि उसे दृष्टान्त बनाकर "अनुदय" का भी "ईषद उदय" अर्थ किया जाये तो मिथ्यात्व गुणस्थान मे १६ कषायों मे से चार का उदय एक समय मे होता है, शेष का अनुदय रहता है।तो इन सब स्थानो पर "अनुदय का अर्थ ईषत् उदय" करने का प्रसग प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है—अकिंचित्कर पुस्तक मे इस पर ध्यान नहीं दिया गया जान पड़ता है।

"अनन्तानुबधी की विसयोजना होने पर उसका कम से कम आवलिकाल तक उदय नहीं हो सकता" यह मानकर भी इस कथन मे गुणस्थान नही खोला गया तथा १०० सख्यक का टिप्पण यहाँ नहीं होना चाहिए था, क्योकि इस प्रकरण की पुष्टि मे वह उपयोगी नहीं है। सयोजना सक्रमपूर्वक होती है, इसलिये सक्रम सम्बन्धी टिप्पण देना था।

आगे इसी पृष्ठ २७ मे लिखा है कि "पुन अनन्तानुबधी की विसयोजना के पश्चात जो जीव प्रथम गुणस्थान को प्राप्त होता है, तब उसके पहले समय से ही अनन्तानुबधी का उदय और बन्ध दोनों ही एक साथ शुरू हो जाते हैं। लेकिन प्रथम समय मे उदयगत निषेको मे अनन्तानुबधी का अनुभाग सत्कर्म है वह सबसे जघन्य शेष है, उस अनुभाग से सूक्ष्म निगोदिया जीव का जघन्य अनुभाग सत्कर्म अनन्तगुणा कहा गया है। इस अनुभाग की जघन्यता को दृष्टिगत करके ही अनुदय का कथन आचार्यों के द्वारा किया जाना सभव है।"

अकिंचित्कर पुस्तक के इस कथन पर विचार करने पर तीन शकाएँ की जा सकती हैं —

(१) क्या विसयोजना करनेवाला जीव जब मिथ्यात्व गुणस्थान मे सीधा गिरकर आता है तब उसके प्रथम समय से ही अनन्तानुबधी का उदय और बन्ध दोनो एकसाथ होते हैं ? या एक आवलि काल तक बन्ध ही होता है, उदय नही होता ?

(२) उसके मिथ्यात्व मे आने पर एक आवलि काल तक अनुदय किसका रहता है ?

(३) इन दोनो कथनो मे सिद्धान्त-विरोध क्यों नहीं दिखाई देता, जब कि सिद्धान्त विरोध स्पष्ट रूप मे समझ मे आता है ?

अब इन तीनों प्रश्नो का समाधान किया जाता है।

यदि विसयोजना करनेवाला जीव जब गिरकर सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान में आता है, तो उसके सक्रमण पूर्वक बन्ध चालू हो जाता है, पर आवलि काल तक उदय नहीं होता। उदय नहीं होने के कारण हैं कि उस मिथ्यादृष्टि के बन्ध होने पर आबाधा

काल मे एक आवलि तक उसका अपकर्षण होकर उदयावलि में निक्षिप्त होने की सामर्थ्य नहीं है। तथा विसंयोजनापूर्वक जो संक्रम हुआ है उसका निक्षेप भी आबाधा से ऊपर के निषेकों में ही होता है। इसीलिये एक आवलि काल तक आबाधा में अनन्तानुबंधी के निषेक नहीं होते। आबाधा में उदयावलि भी आ गयी है। इसीलिये विसयोजना करने वाले जीव के मिथ्यात्व गुणस्थान में आने पर संक्रम भी होता है और बन्ध भी होता है पर एक आवलि काल तक उदय नहीं होता[२०२] —यह आगम का नियम है।

ऐसे जीव के मिथ्यात्व में आने पर एक आवलि काल तक अनन्तानुबंधी का उदय नहीं रहता है। उसके (अनुदय को) ईषत उदय कहना यह सिद्धान्त के विरुद्ध है। उसमे जो दृष्टान्त "अनुदरा कन्या" का दिया गया है उसे देकर ईषत उदयकी पुष्टि करना भी सिद्धान्त के विरुद्ध है।

(३) इन दो शकाओं के समाधान हो जाने पर तीसरी शंका स्वय नामशेष हो जाती है।

यह ठीक है कि मिथ्यात्व की उदीरणा करने वाला जीव अनन्तानुबंधी का कदाचित् (मिथ्यात्व गुणस्थान में) उदीरक है, कदाचित् सासादन गुणस्थान में एक समय से लेकर एक आवलि काल के भीतर तक आया है तो अनुदीरक है।

उदीरणा का जो लक्षण टिप्पण में दिया गया है वह ठीक है। पर जो अर्थ किया गया है कि "किन्हीं विशिष्ट क्रियाओं या अनुष्ठानों के द्वारा कर्म को अपने उदय से पूर्व हीपकाकर उदयगत करना अर्थात् अपने समय से पूर्व ही उदय में ले आना उदीरणा है।" यह लक्षण एक अपेक्षा से ठीक नहीं, क्योंकि उदय के साथ उदीरणा सदा काल होती रहती है[२०३]। इसे सरल शब्दों में यों कह सकते हैं कि जब उदयावलि के निषेक शेष रह जाते हैं तथा और सब निषेक शेष नहीं रहते तब उदीरणा नहीं होती, एक आवलि काल तक उदय ही होता है —यह नियम, जिनका उदयपूर्वक क्षय होता है उनके लिये समझना चाहिए। उदय वाले कर्मों के साथ मिलकर जिनका क्षय होता है उनमे यह नियम लागू नहीं होता। यों यदि अनन्तानुबंधी की विसयोजना करनेवाला जीवमिथ्यात्व में आकर अनन्तानुबंधी की संयोजना करने लगता है तो एक आवलि काल तक उदय और उदीरणा दोनों नहीं होते, क्योंकि ऐसे जीव के उदीरणा उदय की अविनाभाविनी है।

---

२०२ अणसंजोजिदसम्मे मिच्छं पत्तेण आवलित्ति अणं ॥४७८॥ गो. क. का.।

२०३ उदयस्सुदीरणस्सय सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो। मोत्तूण तिण्णिठाण पमत्त जोगी अजोगी य ॥ २७८॥ गो. क. का.।

A ध. पु. १५ पृ. २८६ प. ४-५, ध. पु. १५ पृ. ८१-६७ आदि।

B ज ध पु. १०, पृ ५४. ध. पु १५, पृ ७५ आदि।

४१ एक बात और :-

इकतालिस प्रकृतियाँ (दो वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, ४ आयु, ५ निद्रा, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, तीनों वेद, संज्वलन लोभ) के ही उदय व उदीरणा के स्वामित्व में भेद हैं। इन ४१ के सिवाय शेष बची १०७ प्रकृतियों के उदय के स्वामियों से उदीरणा के स्वामियों में अंश भर भी भेद नहीं है[२०४]।

अतः इस सर्वागम सम्मत बात से यह काँच के माफिक स्पष्ट है कि, अनन्तानुबधी का जब-जब उदय होता है तब तब नियम से उदीरणा भी उसकी होती है –यह निष्कर्ष ध्रुव सत्य है। क्योंकि अनन्तानुबधी, ४१ अपवाद प्रकृतियों में परिगणित नहीं है।

परिशेष न्याय से प्रथम आवली काल तक उदय व उदीरणा दोनों नहीं बनते हैं।

आवली काल तक ऐसे मिथ्यात्वी के अनन्तानुबंधी का बन्ध मिथ्यात्व-निमित्तक (मिथ्यात्व-हेतुक) ही होता है। यहाँ अनुदय कहने में कोई अपेक्षा नहीं है, क्योंकि चौथे आदि गुणस्थान से गिरकर सीधे मिथ्यात्व में आने पर अनन्तानुबन्धी का बन्ध होने लगता है, इसलिये आबाधा में अनन्तानुबंधी के निषेकों की सत्ता नहीं पायी जाती, और जो अप्रत्याख्यानावरणादि का अनन्तानुबन्धी के रूप में संक्रम हुआ है उसके निषेक भी आबाधा में निक्षिप्त नहीं होते, आबाधा के ऊपर (आगे) ही निषेकों में निक्षिप्त होते हैं, इसलिये आबाधा से लेकर उदयावलि तक अनन्तानुबन्धी के निषेकों की सत्ता न होने से अनन्तानुबन्धी का अनुदय रहता है। इसलिये २६ पृष्ठ मे यह कहना कि "लेकिन जैसे ही परिणामों के माहात्म्य से तत्काल ही अनन्तानुबंधी चतुष्क रूप से परिणत हो जाता है तथा उदय में भी आ जाता है" यह आगम विरुद्ध है।

आगे पृ ३० पर प्रारम से १० पंक्ति ऐसी हैं जो परस्पर विरुद्ध हैं। इसे उन्हीं पक्तियों में (अकिंचित्कर पुस्तक मे भी) स्वयं स्वीकार कर लिया गया है। इस कथन से ऐसा लगता है कि कषायप्राभृत और षट्खण्डागम के कथन को एक समझकर यहाँ लिखा गया है। इसकी पुष्टि में जो १०५ सख्यक टिप्पण दिया गया है, उसकी यहाँ क्यों आवश्यकता समझी गयी ? यह हमारी समझ में नही आया।

अकिं पु. पृ. ३० में "अनन्तानुबंधी की रिक्तता का हेतु" इस हेडिंग के बाद "अनन्तानुबधी सत्ता और उदय में तो रहती है लेकिन उदयावलि में क्यों नहीं है इसे समझने के पहले हमें विसंयोजना की संपूर्ण प्रक्रिया को ध्यान में रखना होगा।"

४२ संयोजना के बाद की स्थिति :-

आगे चलकर अकिं पु. के इसी पृष्ठ में लिखा है कि –"यहाँ पर संक्रमण की होने वाली प्रक्रिया मात्र सत्तागत द्रव्य में ही होती है, न कि उदयावलि या उदय में, अत

---

२०४. प स (ज्ञानपीठ) पृ. ५१९-५२२ प्रकरण ५। ७३-७५, गोम्मटसार कर्म. २७८-८१, कर्मस्तव ३९-४३, संस्कृत पंचसंग्रह ३। ५६ से ६०, सर्वार्थसिद्धि (ज्ञानपीठ) पृ. ३५६-५७, राज वा भा. २ पृ ७९३-९४ तथा धवलाजी पु. १५ पृ. ५४ से ६१ आदि।

उदयावलि के द्रव्य को एक आवलि काल तक उदय मे रहने वाली अप्रत्याख्यानावरणादिक कषायो रूप स्तिबुक सक्रमण के द्वारा उदय से एक समय पूर्व ही क्रमश परिणत कराता हुआ उदयावलि को खाली कर देता है। इससे स्पष्ट है कि जैसे एक आवलि तक उदयावलि अनन्तानुबधी की विसयोजना होने पर भी रिक्त नहीं हुई, उसी प्रकार सयोजना के समय भी एक आवलि तक अनन्तानुबधी उदयावलि को पार कर उदय मे नही आ पाती। कारण, उदयावलि मे स्थित द्रव्य मे मात्र स्तिबुक सक्रमण के अलावा सभी दसो कारणो का अभाव पाया जाता है।" पृ ३१।

उसी मे आगे पृ ३२-३३ मे लिखा है कि "पहली बात तो यह है कि अनन्तानुबधी के अभाव मे यह नया बन्ध किसके द्वारा होगा ? यदि कहे कि मिथ्यात्व के द्वारा, तो भी गलत ही है, क्योकि उदय से जीव मे अतत्व श्रद्धान रूप भाव का ही अनुभव होगा वह बन्ध नही कराता। साथ ही अनन्तानुबधी के नये बन्ध के लिये अनन्तानुबधी का उदय होना आवश्यक है। जबकि अभी अनन्तानुबधी का उदय नही है, तब बन्ध कैसे? इसलिये सयोजना होना अलग बात है और अनन्तानुबधी का नया बन्ध होना अलग बात है। इन दोनों को एक मानना हमारी सिद्धान्त अज्ञता ही होगी।"

आगे अकिंचित्कर पुस्तक के पृ ३४ मे लिखा है– "जबकि विसयोजना मे अनन्तानुबधी की विसयोजना होने के बाद भी वह अपने अध्वान-बन्ध उदय काल मे पुन सयोजित हो जाती है"

आगम तो कहता है कि वह गिरकर सासादन गुणस्थान मे आता है तो बन्ध उदय एक साथ बन सकता है और यदि वह गिरकर सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान मे आता है, तो प्रथम समय मे बन्ध तो बन जायगा परन्तु उदय नही बनेगा।

आगे पृ ३७ मे "अनन्तानुबधी मिथ्यात्व की जननी " इस हेडिग के अन्तर्गत जो लिखा गया है उसके विषय मे विचार अलग से किया गया है अत उन्हे भी विचार न कर छोडते है।

अब इस पर गहराई से विचार किया जाता है। यहाँ ये प्रश्न उत्पन्न होते है–

(१) किसी भी प्रकृति का (खासकर अनन्तानुबंधी का) द्रव्य सत्ता और उदय मे तो हो पर उदयावलि मे न हो क्या यह सम्भव है ?

(२) विसयोजना के बाद सयोजना होने मे कम से कम कितना काल लगता है?

(३) उसी प्रकार सयोजना के समय भी एक आवलि काल तक अनन्तानुबधी उदयावलि को पारकर उदय मे क्यो नहीं आ पाती ?

ये तीन शकाये है। इन पर क्रम से विचार किया जाता है।

पहली शका तो यह है कि अनन्तानुबधी की सत्ता और उदय तो रहे पर उदयावलि मे न हो–क्या यह सम्भव है ? इस पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि, यदि उदयावलि मे द्रव्य न हो तो उदय किसका होगा ? एक समय कम उदयावलि मे द्रव्य

के न होने पर उदयावलि के अन्तिम निषेक का उदय स्वोदय प्रकृति वाले क्षपक के तो सम्भव है, क्योंकि उसके क्षपणा के अन्त मे उदयरूप एक निषेक तो बन जाता है। परन्तु अनन्तानुबन्धी की विसयोजना करने के बाद इस मिथ्यादृष्टि के सयोजना होने पर किसी भी प्रकार से उदय संभव नहीं है क्योंकि सयोजना करने के बाद अनन्तानुबधी का द्रव्य उदयावलि और उदय मे निक्षिप्त न होकर आबाधा काल के ऊपर प्रथम निषेक मे निक्षिप्त होता है–ऐसा आगम का नियम है। कषायप्राभृत के अनुसार विचार करने पर तो यह व्यवस्था एक अपेक्षा से बन जाती है। उसमें उदयावलि मे रिक्तता का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि सयोजना के समय ही अनन्तानुबन्धी का पूरा द्रव्य उदय समय से निक्षिप्त हो जाता है, इसलिये जिस समय सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है उसी समय मे अनन्तानुबन्धी का बन्ध, सत्ता और उदय बन जाता है।

दूसरे तथा तीसरेप्रश्न का उत्तर –विसयोजना के बाद संयोजना होने मे कम से कम अन्तर्मुहुर्त काल लगता है, क्योंकि उपशम समयदृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि का काम कम से कम जघन्य अन्तमुहुर्त काल है। इसलिये सयोजना होने मे अन्तर्मुहुर्त काल लगता है। अत मिथ्यादृष्टि के सयोजना के प्रथम समय मे उदयावलि रिक्त ही रहती है। तथा अनन्तानुबन्धी का द्रव्य आबाधा के ऊपर की लडी में प्रथम समय से निक्षिप्त हुआ है। इसलिये उसका द्रव्य उदयावलि को पार कर उदय मे आना सम्भव ही नहीं है। दूसरे, उदयावलि का अन्तिम निषेक ही उदय मे आता है और उदयावलि के ऊपर द्वितीयावलि का अन्तिम निषेक उदयावलि के प्रथम निषेक का स्थान ले लेता है, इसलिये इस समय उदयावलि पूरी बनी रहती है। अत उदयावलि को पार कर उदय मे आने का सवाल ही खड़ा नहीं होता[२०५]।

४३ अध्यात्म में उल्लेख मात्र

वैसे तो अकेले आत्मा को आलम्बन कर जो कथन किया जाये वह तत्वत. अध्यात्म कहलाता है। यह उसकी व्युत्पत्ति है–आत्मनीति अध्यात्मम्। तथा जिनागम मे सब जगहसब विषयों का समावेश किया जाता है. और प्रसग प्राप्त उसको बतलाया भी जाता है। यहाँ भी वह किया गया है। इसलिये यह समझना चाहिए कि अन्य को निमित्तपने की अपेक्षा कारण कहना असद्भूत व्यवहार नय का विषय है। वे कारण पाँच हैं –मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। यह ८वे अध्याय का पहला सूत्र त्रिकाल की (द्रव्यार्थिकनय की) मुख्यता से कथन करने वाला सूत्र है। और दूसरे सूत्र मे वर्तमान की (पर्यायार्थिकनय की) मुख्यता की गई है। उसमें योग और कषाय को मुख्यता दी गई है। मिथ्यात्व को छोड़ दिया गया है, क्योंकि मिथ्यात्व अतीत काल की या बिना काल की अपेक्षा कथन करने वाला सूत्र है।

२०५ खु ब, का प्रथम सूत्र १, पृ १६४, १६५, १६६, १६७, १६८।

जो समयसार में आस्त्रव अधिकार के अन्तर्गत आस्त्रव के कारणों का कथन करते हुए मिथ्यात्व आदि चार भेद किये हैं वे कषाय में प्रमाद को अन्तर्भूत करके ही कहे गये है। उनके दो भेद हैं —द्रव्य प्रत्यय और भाव प्रत्यय। ज्ञानावरणादि कर्मों का आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप जो बन्ध होता है वे द्रव्य प्रत्यय हैं। और ससारी जीव के जो मिथ्यात्व, अविरति आदि भाव हैं वे भाव प्रत्यय हैं। ससार में जीव के भावप्रत्यय न हो तो द्रव्य प्रत्यय जीव के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप आस्त्रव में कारण नहीं होते। जैसे सिद्ध जीवों के राग, द्वेष और मोह नहीं है, इसलिये उनके द्रव्य प्रत्यय नहीं है, क्योंकि उसके निमित्तभूत भाव प्रत्यय का अभाव है। वे (भाव प्रत्यय) न हो तो द्रव्य प्रत्ययों का अभाव नियम से हो जाता है। इन दोनों का एक काल है। द्रव्य प्रत्ययों का कारण तो पुद्गल द्रव्य का स्पर्श गुण के भेद रूप स्निग्ध और रूक्ष गुण हैं। इस आधार पर बन्ध के होने में "द्वियाधिक गुण रूप" सिद्धात लागू हो जाता है। भाव प्रत्यय द्रव्य प्रत्यय पूर्वक होते हैं, इसलिये द्रव्य प्रत्ययों को भाव प्रत्यय के होने मे कारण कहा है। यह ससार की परिपाटी की प्रक्रियाहै।भाव प्रत्यय प्रति समय द्रव्य प्रत्ययों के आस्त्रव पूर्वक बन्ध के कारण हो जाते हैं, और द्रव्य प्रत्ययों की उदय और उदीरणा रूप भाव प्रत्यय उन द्रव्य प्रत्ययों के आस्त्रव के कारण हो जाते हैं। इसी बात को समयप्राभृत मे इन शब्दों में कहा है —ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्त्रव पूर्वक बन्ध का वे द्रव्य प्रत्यय कारण होते हैं, और उन द्रव्य प्रत्ययों का आस्त्रव पूर्वक बन्ध का वे ससारी जीव के राग, द्वेष और मोह रूप भाव कारण होते हैं[२०६]। इन गाथाओं की टीका मे जो कहा गया है उसका आशय है राग, द्वेष और मोह ही आस्त्रव हैं, जो कि अपने मे और पर मे एकत्व रूप और राग, द्वेष रूप अपने परिणाम के निमित्त से हुए हैं, उनमे जड़पना न होने से चिदाभास है, तथा ये पुद्गल के परिणाम रूप मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप हैं। वे ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों के आस्त्रव के निमित्त है। उनके आस्त्रव रूप निमित्त के निमित्त अज्ञान मय आत्मा के परिणाम राग द्वेष और मोह (मिथ्यात्व) है। इस कारण नवीन मिथ्यात्व आदिक कर्म के आस्त्रव के निमित्तपना के निमित्त होने से राग, द्वेष और मोह (मिथ्यात्व) ही आस्त्रव हैं।

वीतराग सम्यग्दृष्टि कहाँ से हो जाताहै, यह स्वतन्त्र विषय है। यदि सम्भव हुआ तो उसका आगे विचार करेगे।

यहाँ तो बन्ध के कारणों का विचार करना है। अकिंचित्कर पुस्तक से ऐसा निश्चित होता हैकि, तत्वार्थ सूत्र के ८वे अध्याय मे जो सूत्र आये हैं प्रथम और द्वितीय। उनमे प्रथम सूत्र द्रव्य प्रत्ययों का कथन करने वाला सूत्र है और दूसरा सूत्र भाव प्रत्ययों का कथन करने वाला सूत्र है। अकिंचित्कर पृ ५५-५८ के ये शब्द है—"उपर्युक्त आशय की अभिव्यक्ति ही सम्भवतः आचार्य उमास्वामी (गृद्धपिच्छ) जी ने अपने दोनों सूत्रों के माध्यम से की है।" अर्थात् उनका पहला सूत्र "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाबन्ध हेतवः" द्रव्य प्रत्ययों के कथन को करने वाला

२०६ स प्रा गा ८० १६४-१६५।

है तथा दूसरा सूत्र "सकषायत्वात्जीव: कर्मणोयोगान् पुद्गलानदत्ते स: बन्ध:" यह भव प्रत्ययों का प्ररूपक है।

जबकि आगम से पता चलता है कि पहला सूत्र द्रव्यार्थिकनय की मुख्यता से कहा गया है और दूसरा सूत्र पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कहा गया है। यदि केवल पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन किया जाये, तो द्रव्यार्थिकनय की मुख्यता से कथन करने का अवसर ही नहीं मिलता। जबकि कार्य-कारण भाव की सिद्धि दोनों नयों से करनी चाहिये। और जो कार्य होता है वह भी दोनो नयों का विषय है, क्योंकि सामान्य को छोड़कर विशेष से कथन करना नहीं बनता। विशेष को छोडकर सामान्य से कथन करना भी नहीं बनता। इसलिये द्रव्यार्थिक तीनों नयों की अपेक्षा कथन करना, सामान्य की मुख्यता से कथन करना है और पर्यायार्थिक नयों की अपेक्षा कथन करना, विशेष (पर्याय की) की मुख्यता से कथन करना माना गया है[२०७]। प्रमाण ज्ञान तो नय ज्ञान के कथन मे गौण रहता है। उसका यह विषय भी नहीं। वह तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा है। यह तो नय ज्ञान का विषय है। उसमे भी पर पक्ष को छोड़ा नही जाता, पर पक्ष की उपेक्षा (गौरवता) रहती है[२०८]। आगम की यह व्यवस्था है।

इसी बात को ध्यान में रखकर सर्वार्थसिद्धि के ८वें अध्याय के सूत्र २ की टीका मे यह कथन भी उपलब्ध होता है कि इसलिये मिथ्यादर्शन आदि के अभिनिवेशवश गीले किये गये आत्मा के सब अवस्थाओं मे योग विशेष से उन सूक्ष्म, एक क्षेत्रावगाही अनन्तानन्त कर्मभाव को प्राप्त होने योग्य पुद्गलों का उपश्लेष होना बन्ध है यह कहा गया है। जिस प्रकार पात्र विशेष में प्रक्षिप्त हुए विविध रसवाले बीज, फूल और फलों का मदिरारूप से परिणमन होता है उसी प्रकार आत्मा मे स्थित हुए पुद्गलो का भी योग और कषाय के निमित्त से कर्मरूप से परिणमन जानना चाहिए।

यद्यपि कथन तो क्रम से होता है, पर निमित्त-नैमित्तिक भाव एक समय मे बन जाता है। सातों नयों का विषय तो एक समय में है। उसका नय दृष्टि से कथन क्रम से होता है यह आगम की व्यवस्था है। इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। इस प्रकार यह दो सूत्रों का पृथक-पृथक क्यों निर्देश किया इसका आशय समझना चाहिए।

४४ सरागसम्यग्दर्शन किसके होता है ?

इस विषय मे विशेष तो नही लिखेगे। मात्र अनगार धर्मामृत[२०९] का दो तीन उदाहरण देकर इस विषय को पाठकों को समक्ष रख देना चाहते है यथा—उक्त श्लोक

२०७ सकलादेश प्रमाणाधीनो। विकलादेशोनयाधीनः। स सि. प्रथम अ सू ६ की टीका।

२०८ ध्र. अ पृ २७६—पाणादिवादो णाम हिंसाविसयजीववावारो। सो च पज्जाओ। तदो ण सो कारण, पज्जायस्स एयतस्स कारणत्तविरोहादोत्ति ? ण, पज्जायस्स पहाणीभूदस्स आयट्ठियपज्जयस्स कारणत्तवलंभादो। ध. पु. १२।

२०९ अनगार ध श्लोक ५३—तैः स्वसंविदितैः सूक्ष्मलोभान्ताः स्वा दश विदुः। प्रमत्तान्तान्यगा तज्जवाक्चेष्टानुमितैः पुनः॥ असयतसम्यदृष्टयादिसूक्ष्मसांपरायपर्यन्ताः सप्त। का विदुः ? दश सम्यक्त्वम् किंविशिष्टाम ? स्वमात्मीयम्। कैः ? तैः स्वगत सम्यक्त्वजन्यैः प्रशमादिभिश्चतुर्भिलिङ्गैः। किंविशिष्टैः ? स्वसंविदितैः स्वेनात्मना सम्यग्निर्णीतिः। प्रमत्तान्तान्यमां पुनर्दश विदुः। सूक्ष्मलोभान्ता यथार्थं व्यवहारिणः।

का आशय यह है कि अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्म साम्पराय पर्यंत प्रशमादि चार कारणो से अपने मे उत्पन्न हुए स्वसवेदन द्वारा सम्यग्दर्शन को जाने तथा प्रमत्तगुणस्थान पर्यंत अन्य मे उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन को उसमे रहने वाले वचनों और काय चेष्टाओं से अनुमान करके जाने। इससे मालूम पड़ता है कि स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुए सम्यग्दर्शन को स्वय स्वसवेदन द्वारा जान लेता है, और अन्य में उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन को उसमे रहने वाले प्रशम, सवेगादि के द्वारा जान लेता है। चौथे गुणस्थान से जो असख्यातगुणी निर्जरा चालू हो जाती है[२१०] वह स्वसवेदन सम्यक्त्व का चिन्ह है। वह असख्यातगुणी निर्जरा अयोगियों तक जाती है। यदि कहा जाता है कि प्रशमादि बाह्य चिन्ह तो मिथ्यादृष्टि के भी पाये जाते हैं। इसलिये श्लोक मे कहा है कि सम्यक्प्रकार से निर्णय किये हुए अनुमान द्वारा जाने गये होने चाहिए क्योकि प्रशम सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य बुद्धि रूप सम्यग्दर्शनजन्य वचन और चेष्टा अन्तरंग स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन का ज्ञापक निमित्त है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

शका —सराग सम्यग्दर्शन किसके होता है ?

समाधान —जिसके औपशमिक वेदक, और क्षायिक सम्यग्दर्शन विद्यमान है।

शका —ऐसे जीव के क्यों होता है ?

समाधान —क्योंकि निश्चय और व्यवहार का जोड़ा है। १०वे गुणस्थान तक यह नियम चलता है।

शका —आगे क्यों नहीं चलता ?

समाधान —आगे कषाय का अभाव होने से १०वे गुणस्थान तक अबुद्धिपूर्वक कषाय होने से व्रत का व्यवहार माना गया है, आगे कषाय का अभाव होने से व्रत रूप व्यवहार का भी अभाव हो जाता है। छठवें गुणस्थान तक बुद्धिपूर्वक व्यवहार चलता है। आगे निमित्त का सद्भाव होने से अबुद्धिपूर्वक व्यवहार स्वीकार कर लिया जाता है। उपयोगपूर्वक (बुद्धिपूर्वक) व्यवहार और अबुद्धिपूर्वक होने वाले व्यवहार मे अन्तर है।

शका —यह कैसे मालूम पडे कि चौथे गुणस्थान मे स्वसवेदन सम्यक्त्व हो जाता है ?

समाधान —प्रवचनसार की २३७ वीं गाथा और उसकी तत्वदीपिका नामक टीका से यह मालूम पड़ता है कि उसमे श्रद्धान का अर्थ प्रतीतिरूप किया है। यह चौथे गुणस्थान का कथन करने वाली गाथा है। उसमे श्रद्धान शून्य आगमज्ञान का भी निषेध किया गया है। यहाँ आत्मानुभव ही स्वानुभव है[२११]। इसी बात को अनगारधर्मामृतमे दर्शाया है। यहाँ पर शुद्धात्म मे शुद्ध-बुद्ध तथा एक स्वभाववाला स्वय

२१० सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजक दर्शनमोह क्षपकोपशमकोपशान्तमोह क्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसख्येयगुणनिर्जराः। स सि अ ९ सू ४५।

२११ प्र सा गा २३७, त व टी आत्मान श्रद्धानोऽप्यनुभवन्नपि। आत्मतत्त्व प्रतीतिरूप श्रद्धान यथोदिता तत्त्वानुभूति रूप ज्ञानं।

का आत्मा ध्येय रहता है इसलिये शुद्ध आत्मारूप ध्येय होने मे शुद्ध आत्मा का अवलबन होने से और आत्मा का साधक होने से शुद्धोपयोग बन जाता है। इसी भाव को सवर कहा जाता है। यह ससार के कारणभूत मिथ्यात्व रागादिरूप अशुद्धपर्याय के समान अशुद्ध नहीं है और फलरूप केवलज्ञान लक्षण शुद्ध पर्याय के समान पूर्ण शुद्ध नहीं होता है। किन्तु उन शुद्ध और अशुद्ध पर्यायों मे विलक्षण शुद्धात्मानुभूतिरूप निश्चयरत्नत्रय स्वरूप एकदेश प्रकाश रूप तथा एकदेश निरावरण रूप तीसरी अवस्था रूप मोक्ष का कारण कहा जाता है[२१२]। इसलिये यहाँ यह समझना चाहिए कि जिसके निश्चय सम्यग्दर्शन होता है उसी के व्यवहार (सराग सम्यग्दर्शन) होता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन का ही दूसरा नाम सरागसम्यग्दर्शन है। एक के बिना दूसरा नही होता अन्यथा उसे मिथ्या माना जाता है।

मान्य अन्य विद्वानों के अभिप्राय :-

इस विषय मे अन्य विद्वानो के अभिप्राय को देने के लिए मैं अपने को रोक नही सकता, क्योंकि यह हमारा कहना है कि अन्य विद्वानो ने भी इसी बात का समर्थन किया है, यह देखना यहाँ पर आवश्यक प्रतीत होता है।

४५ स्व. मान्य पं. हीरालाल सि. शा., सादूमल :-

वे अपनी पुस्तक के विशेषार्थ मे लिखते हैं कि उस मिथ्यादृष्टि के २२ प्रकृतियो का ही उदयावलि मे प्रवेश होता है। उसके अनन्तानुबधी की उदीरणा तो अति दूर रहे और उसका उदय भी दूर रहे, अरे! उस समय तो इस अनन्तानुबधी चतुष्क के द्रव्य का एक परमाणु भी उदयावलि मे प्रविष्ट हो नहीं सकता। फिर उस समय उसकी उदय-उदीरणा कैसे बनेगी ? उदीयमान प्रथम निषेक से लेकर आवलि (उदयावलि) पर्यन्त के निषेकों की लडी मे अनन्तानुबन्धी चतुष्क का एक परमाणु भी नहीं है।

४६ मान्य पं. जवाहरलालजी सिद्धान्तशास्त्री भिण्डर :-

करणदस पुस्तक के अन्त मे वे लिखते हैं कि, आचार्य वीरसेन ने मिथ्यात्व को लेश्या लिखा है और लेश्या उसे कहते है जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है, अत मिथ्यात्व भी लेश्या के समान निर्विवादरूप से कर्म लेप का प्रमुख कारण है[२१३]।

वे यह भी लिखते हैकि, मिथ्यात्व के अन्तिम समयवर्ती जीवों तक के नियम से मिथ्यात्व प्रत्ययक अर्थात् मिथ्यात्व के निमित्त से मिथ्यात्व का और ज्ञानावरणादि कर्मों

---

२१२ अन घ प्रथम अ ११० श्लो की टी —अत्र च शुद्धनिश्चये शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिप्रतीति शुद्धध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बनत्वाच्छुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते। स च भावस वरा इत्यु च्यते। एष च ----तृ तीयमवस्थान्तर मण्यते।

२१३ धवला पु ८ पृ ३५६। लिंपदिअप्पी कीरदि एदाए णियय पुण्णपाव च। जीवोत्ति होइ लेस्सागुणजाणय क्खादो ध पु. १ पृ १५०।

का बध जानना चाहिए। सातिशय मिथ्यादृष्टि के उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करते समय करणलब्धि मे अत्यन्त विशुद्ध परिणामों के कारण ४६ प्रकृतियों का सवर हो जाता है, परन्तु मिथ्यात्व का सवर नहीं होता। इसका कारण क्या है ? ढूढने पर ज्ञात होता है कि मिथ्यात्व का उदय ही इसका कारण है[२१४]।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे ऊपर से गिरते समय एक आवलि काल तक अनन्तानुबधी की सयोजना करने के काल मे जघन्य युक्त ७ सख्यात प्रमाण असख्यातसमयों तक अनन्तानुबधी का उदय नहीं होने पर भी मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध होता रहता है, साथ ही अनन्तानुबन्धी का भी बन्ध होता रहता है, पर उसका उदय नहीं होता। यहाँ ईषत अनुदय का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि बन्धावलि काल है। जो ऐसा नहीं मानते वे बन्धतत्व सम्बन्धी भूल करते हैं।

कषाय और योग हेतुक बन्ध उस आवली काल मे होता है। जबकि सासादन गुणस्थान मे ६ आवलि काल तक अनन्तानुबधी उदित रहती है वहाँ एक समय के लिए भी वह मिथ्यात्व को नहीं बाध सकती।

सारत जहाँ मिथ्यात्व रूप आधार है वहाँ अनन्तानुबन्धी का बन्ध निश्चित होता है पर जहाँ सासादन में अनन्तानुबन्धी है वहाँ पर मिथ्यात्व के बन्ध का नियम नहीं बनाया जा सकता। यदि इतनी सब कथनी ध्यान मे नहीं रखकर पुनरपि तर्क किया जाये कि अनन्तानुबधी विसयोजित करने वाले के मिथ्यात्व मे आने पर अनन्तानुबधी का उदय, यानि उसका अनुभाग उदय, सबसे जघन्य होता है अतएव उसे अनुदय तुल्य होने से अनुदय कहा जाता है तो उसका उत्तर यह है कि —

१ प्रथम तो आगम मे उक्त प्रथम आवली कालवर्ती मिथ्यात्वी के अनन्तानुबधी के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश का पूर्णत अनुदय ही कहा है। इसलिये उक्त तर्क ठीक नहीं।

२ दूसरा यह भी निवेदन है कि जयधवल पु ५ पृ १८२ पर जो अनन्तानुबधी के जघन्य अनुभाग के स्वामित्व का कथन किया है वह मात्र अनुभाग सत्व के स्वामियों का कथन है अनुभाग उदय के स्वामियों का कथन नही है। मूलागम ही देखिये .—

यथा —**अणंताणुबंधीण जहण्णयमणुभागसंतकम्म कस्स ? सुगम। पढमसमयसंजुत्तस्स। सुहमेइंदिएसु जहण्णसामित्तं किण्ण दिण्णं ? ण, पढमसमयसमयसंजुत्तस्स पचग्गाणुबंधं पेक्खिदूण सुहुमणिगोद जहण्णाणुभागसत - कम्मस्स अणतगुणत्तादो।** (ज ध पु. ५ १६६-१६७)

अर्थ —"अनन्तानुबधी चार का जघन्य अनुभाग सत्कर्म किसके होता है ? यह सूत्र सुगम है। प्रथम समयवर्ती सयुक्त के होता है।

२१४ मिथ्या वितथा व्यलीका असत्या दृष्टिर्दर्शन विपरीतैकान्तविनय सशयाज्ञानरूप मिथ्यात्व कर्मोदयजनितायेषाते मिथ्यादृष्टयः। ध पु. १ सू. १ पृ १६२।

शका –सूक्ष्म एकेन्द्रियों मे जघन्य अनुभाग का स्वामिपना क्यों नहीं कहा ?

समाधान –नहीं, क्योंकि प्रथम समय में अनन्तानुबन्धी से सयुक्त हुए जीव के जो नवीन अनुभाग बन्ध होता है, उसे देखते हुए सूक्ष्म निगोद जीव का जघन्य अनुभाग सत्व अनंतगुणा है ।"

नोट –अत्यन्त स्पष्ट है कि यहाँ उदय का प्रकरण नहीं है, मात्र सत्व का प्रकरण है । फिर उसे उदय में घटाना कहाँ का न्याय है ?

(यहाँ सत्व का प्रकरण है) ज ध पु. ५ पृ १६३ व १६७–१६८ के विशेषार्थ ।

३ तीसरी मुख्य व ध्यातव्य बात यह है कि यदि अनुभाग की जघन्य उदय रूप अवस्था को यदि अनुदय माना एव कहा जाता तो –

"ससार मे मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग सत्व (सत्कर्म) सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त के ही होता है ।" ऐसा कहा गया है ।

दर्शनमोह की क्षपणा के लिये, उद्यत वेदकसम्यक्त्वी के योग्य काल मे जो तत्प्रायोग्य अल्पतम अनुभाग होता है, उसे भी आगम मे जघन्यता नहीं बतायी । अपितु सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त के ही मिथ्यात्व का सर्वजघन्य अनुभागसत्व का स्वामित्व बताया (तो क्या जघन्य अनुभाग सत्त्व होने मात्र से किसी भी कर्म–सिद्धान्त के ग्रन्थ में उक्त सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्त को अमिथ्यात्वी कहा है क्या ? यदि नहीं । तो फिर आगमकार जघन्य अनुभाग युक्त अनन्तानुबन्धी के सत्त्व के स्वामीजीव केयदि जघन्य भी उदय होता तो अवश्य ही उसे जघन्य उदय वाला कहते; "अनुदय" वाला नहीं । ऐसे कई उदाहरण और भी हैं देखिए –ज ध पु. ५ पृ १५, ३० तथा पृ. २५६, गो क गा. १७० । ध. पु. १५ पृ १८४, २६६, ध पु. ८पृ २७, आदि ।

४. दसवे गुणस्थान के चरम समय मे जघन्य अनुभाग उदय के कारण उसको अनुदय कहते या मानते तो चरम समय की अपेक्षा वहाँ एक मात्र योग प्रत्यय ही रहता। इस तरह दसवें गुणस्थान मे उत्कृष्ट दो प्रत्यय (सज्वलन लोभ और योग) दसवे गुणस्थान के प्रथमादि द्विचरम समय तक की अपेक्षा) तथा जघन्यत (सूक्ष्मसाम्पराय के चरम समय की अपेक्षा) एक प्रत्यय (मात्र योग रूप), ऐसे दो स्थान (१,२ प्रत्यय रूप) बन जाते । परन्तु कर्म-शास्त्रों में दसमे गुणस्थान में सर्वत्र जघन्यादि भेद बिना दो प्रत्ययों का एक ही स्थान बताया है । (गो क पृ ७२१ आर्यिका आदिमति जी स रतनचन्द मुख्तार, ध पु. ८ पृ २७ अभिनव सस्करण, प्राकृत पचसग्रह । शतक गा २०३ टीका पृ १६७ । सस्कृत पचसग्रह ४ (६८–६९ आदि ।

५, सव्वमदाणुभाग लोभसजलणस्स अणुभागसतकम्म ––––

––––अणताणुबधिमाण जहण्णाणुभागोअणंतगुणो ––––(ज ध पु ५ पृ २५६ से २६४)

अर्थ :– सज्वलन लोभ का जघन्य अनुभागसत्त्व (जो कि सूक्ष्म साम्पराय–चरमसमयवर्ती के होता है) सबसे मद अनुभाग वाला है ।

उससेअनन्तानुबधी चार कषायों का जघन्य अनुभाग सत्त्व (जो कि प्रथम समय सयुक्त मिथ्यात्वी के सत्त्व मे प्राप्त होता है) अनन्तागुणा है।

(यतिवृषभाचार्यकृत चूर्णिसूत्र) इस प्रकार चरम समयी सूक्ष्मसाम्पराय के उदय को स्पष्टतः उदय कहने वाले आचार्य उससे अनन्तगुणे अनुभाग-अविभाग-प्रतिच्छेदो युक्त अनुभाग (अनन्तानुबन्धी के जघन्य अनुभाग) रूप उदय को आचार्य कैसे उदयनहीं कहेगे ? अपितु अवश्य कहेगे। परन्तु प्रथम आवलि कालवर्ती सयुक्त मिथ्यात्वी के अनन्तानुबधी उदित है ही नही, इसलिये आचार्यजी ने अनुदय कहा है।

४७ मान्य पं. भुवनेन्द्र कुमारजी शास्त्री बांदरी (सागर)।

१ तीव्र कषाय होने का कारण "तीर्थंकरादि की आसादना लक्षण मिथ्यात्व ही माना गया है। यदि कोई तीर्थंकर प्रकृति की आसादना लक्षण मिथ्यात्वरूप नहीं परिणमे तो तीव्र कषाय नही हो सकती।"

२ कर्म से सबध कराने मे मिथ्यात्व प्रमुख कारण है। मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग ये लेश्याये है। जो जीव को कर्मों से लिप्त कराती है वह लेश्या है। प्रमाण— का लेस्सा णाम ? जीव-कम्माण ससिलेसणयरी, मिच्छत्तासयम—कषाय-जोगात्ति भणिद होदि। ध पु ८, पृ ३५६।

३ अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्व और चारित्र को घातती है। यहाँ सम्यक्त्व को भी घातती है यह अनन्तानुबन्धी को मिथ्यात्व के साथ रहने से बन्ध के काल की प्रत्यासत्ति देखकरऐसा उपचार से कह दिया जाता है कि, अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्व को घातती है। वास्तव मे तो वह चारित्रमोहनीय की प्रकृति होने से चारित्र को ही घातती है।

४ ध पु १, पृ १७० मे तो—"तस्यचारित्र प्रतिबन्धकत्वात्" अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्र का प्रतिबन्धक है आगम मे ऐसा भी तो कथन है। मुख्य रूप से अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्र का ही घातकरती है, गौण रूप से चारित्र और सम्यक्त्व इन दोनो की प्रतिबन्धक मानी जाती है, फिर भी परमागम मे मुख्य नय की अपेक्षा इस तरह का उपदेश नही दिया गया है।

४८ स्व. मान्य पं. कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री :-

मिथ्यात्व को कर्म बन्ध रूप कार्य मे अकिंचित्कर कहना आगम के विरूद्ध है।

१ ससार मे मिथ्यात्व का और मोक्षमार्ग मे सम्यक्त्व का महत्त्व सर्वागमसम्मत है यदि मिथ्यात्व बन्ध मे अकिंचित्कर है तो मोक्षमार्ग मे सम्यक्त्व भी अकिंचित्कर ठहरता है, तब आचार्य समन्तभद्र का यह कथन कि तीनों कालों और तीनों लोकों मे सम्यक्त्व के समान कल्याणकारी और मिथ्यात्व के समान अकल्याणकारी कोई नहीं है जिसका समर्थन चारो अनुयोगों के शास्त्र एक मत से करते हैं वह मिथ्या ठहरता है।

२. आठ कर्मों में मोहनीय की प्रधानता है, और मोहनीय के दो भेदों मे दर्शनमोहनीय की प्रधानता है। दर्शनमोहनीय का एक ही भेद है –मिथ्यात्व। अत प्रकारान्तर से मोहनीय का समस्त महत्व मिथ्यात्व को ही प्राप्त हुआ है। जब तक उसका सतत उदय विद्यमान है, तब तक ससार अनन्त है। इसी से मिथ्यादर्शन या मिथ्यात्व को अनन्त कहा है, उस अनन्त मिथ्यात्व के साथ बधने वाली कषाय इसी से अनन्तानुबन्धी कहलाती है। उसके (अनन्तानुबन्धी)के कारण मिथ्यात्व अनन्त नहीं है, किन्तु अनत मिथ्यात्व के कारण वह कषाय अनन्तानुबन्धी है।

३. तीन आयुओं को छोड़कर शेष सब कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध उत्कृष्ट सक्लेष सेकहा है। तथा आहारकद्विक, तीर्थंकर और देवायु को छोडकर सब उत्कृष्ट स्थितियो का बन्धक मिथ्यादृष्टि को कहा है। इससे स्पष्ट है कि मिथ्यात्व भाव ही तीव्र सक्लेष का कारण होता है।

४ दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के आस्त्रव के कारण भिन्न-भिन्न कहे है। कषाय के उदयसे हुआ तीव्र परिणाम चारित्रमोहनीय के आस्त्रव का कारण है, जबकि केवली, श्रुत सघ आदि का अवर्णवाद दर्शनमोह के आस्त्रव का कारण है, अर्थात् कषाय के उदय से हुए तीव्र परिणाम से भी मिथ्यात्व के उदय से हुआ परिणाम भयानक है।

५ तत्वार्थ सूत्र के छठे अध्याय मे कर्मों के आस्त्रव के कारणों का वर्णन करते हुए अन्तिमसूत्र की व्याख्या मे कहा है कि, यह कथन अनुभाग विशेष की दृष्टि से है– इसी सन्दर्भ मे लिखा है कि अत मिथ्यात्व को स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध का हेतु न मानना उचित नहीं है। यदि ऐसा होता तो मिथ्यादृष्टि को ही उत्कृष्ट स्थिति का बन्धक न कहा गया होता।

६ आज तोचारित्र धारण पर तो जोर दिया जाता है किन्तु सम्यग्यदृष्टि बनने की चर्चा भी नहीं की जाती है मानों जैन कुल मे जन्म लेने से ही सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, जबकि आगम चारित्र धारण करने से पहले सम्यक्त्व प्राप्त करने पर ही जोर देता है। क्योंकि सम्यक्त्व विहीन चारित्र, चारित्र नहीं है और न चारित्र धारण कर लेने से ही सम्यक्त्व हो जाता है, दोनो की प्रक्रिया ही भिन्न है। आगम तो चारित्र भ्रष्ट को भ्रष्ट नही कहता, श्रद्धान भ्रष्ट को ही भ्रष्ट कहता है। आज जो चारित्र धारियों की विसगतियाँ सुनने मे आती है, उनका मूल कारण सम्यक्त्व का अभाव ही है। सम्यग्दृष्टि चारित्र धारण कर किसी प्रकार की लोकेषणा के चक्क र मे नही पड सकता, क्योंकि उसकी दृष्टि मे ससार, शरीर और भोगों का यथार्थ स्वरूप खचित होता है। अत कषायभाव से मिथ्यात्व भाव भयानक है।

४६ मान्य पं. श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री :-

प्रथम बात –मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व, नपुसकवेद आदि जिन १६ प्रकृतियों का नियम से बन्ध करता है उनके बन्ध मे मिथ्यात्व के उदय से होने वाला मिथ्यात्व

परिणाम ही कारण है । दूसरी बात-दर्शनमोह सब से बलवान है । उसके रहते हुए मोक्षमार्ग का द्वार ही बन्द रहता है ।

५० पं. कैलाशचन्दजी शास्त्री, ललितपुर :-

मिथ्यात्व ही सात व्यसनों मे सबसे बड़ा पाप है । मिथ्यात्व को बन्ध का कारण नहीं मानने पर यह कथन कैसे बनेगा । यदि कषाय ही बन्ध का कारण है और मिथ्यादर्शनादिक बन्ध के कारण नहीं हों तो सर्वार्थसिद्धि मे उक्त सूत्र (४-२) की व्याख्याकरते हुए यह वचन कैसे बनेगा कि "मिथ्यात्व आदि के आवेश–वश आर्द्रीकृत आत्मा के सब ओर से योग विशेष के कारण उन सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही अनन्तानन्त कर्मभाव को प्राप्त हुए पुद्गलों का उपश्लेष होना बन्ध है ।" यत सर्वार्थसिद्धि जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ मे यह वचन उपलब्ध होता है । इसलिये बन्ध के प्रकरण मे मिथ्यात्व को अकिचित्कर नही ठहराया जा सकता । इसलिये मिथ्यात्व को सामान्य प्रत्यय के समान विशेष प्रत्यय मानना ही योग्य है[२१५] ।

५१ ब्र. प्यारेलालजी सहारनपुर :-

अपने एक लेख मे ब्र जी ने मिथ्यात्व को कषाय से कथचित भिन्न और कथचित अभिन्न सिद्ध किया है ।

५२ मान्य पं. पद्मचन्दजी शास्त्री संपादक 'अनेकान्त', दिल्ली ।

१ एक सज्जन बोले –पडितजी ! "मिथ्यात्व किचित्कर है या अकिंचित्कर" इसे आप क्या जाने ? हमने कहा –आपका कहना ठीक है । मतलब करणानुयोग के ज्ञाता भी इस विषय के प्रतिपादन मे अकिचित्कर और विपरीत श्रद्धा मे है, तो हमारी क्या बिसात ? पर इससे द्रव्यानुयोग को तो झूठा नहीं माना जा सकता, जब द्रव्य ही न होगा तब करण होगा किसमे ? मूल तो द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यानुयोग ही है, जो द्रव्यो के गुणस्थान आदि की पूरी जानकारी देता है ।

२ "मिथ्यात्व अकिचित्कर" के बहाने सम्यग्दर्शन की महिमा को लुप्तकर दिया।

३ लोगो मे मिथ्यात्व के विषय का दुष्प्रचार अवश्य हुआ है । दूसरी बात, मिथ्यात्व को बन्ध मे अकिचित्कर मानने से पद्मावती आदि रागी देवी देवताओं की महिमा पूजा को बढावा मिलेगा । लोग कहेगे –जब मिथ्यात्व बघ का कारण ही नहीं है, तो हम

---

२१५ मिथ्यादर्शनाद्यवेशादार्द्रीकृतस्यात्मनः सर्वता योगविशेषसेषा सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिनामनन्तानन्त प्रदेशाना पुदगलाना कर्मभावयोग्यानामविभागेनोपश्लेषो बन्ध इत्याख्यायते । स सि अ ८ सू. २ टी पृ २६४ ।

क्यो इस मिथ्यात्व से रूके ? हम तो इन्हे मात्र सासारिक इष्ट-सिद्धि के लिये पूजते हैं आदि ।

४ अज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद्वीतमोहत ।
ज्ञानस्तोकाच्चमोक्ष स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥ आ मी. ९८

मोह विशिष्ट व्यक्ति के अज्ञानसे बन्ध होता है । मोहरहित व्यक्ति के ज्ञान से बन्ध नहीं होता है । मोह रहित आत्मज्ञान से मोक्षहोता है । मोही के ज्ञान से बन्ध होता है। अत यह बात प्रमाणित होती है, कि बन्ध का कारण मोहयुक्त अज्ञान है ।

५ श्रीविद्यानन्दि स्वामी अष्टसहस्री पृ. २६७ मे कहते हैं कि—मोह विशिष्ट अज्ञान मे सक्षेप से मिथ्यादर्शन आदि का सग्रह किया गया है । इष्ट, अनिष्ट फल प्रदान करने मे समर्थ कर्म बन्ध का हेतु "कषायैकार्थ समवायी" अर्थात् अज्ञान के अविनामावी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, तथा योग को कहा गया है । मोह और अज्ञान मे मिथ्यात्व का समावेश हो जाता है ।

उक्त प्रसग को अष्टसहस्री विवरणम दशम् परिच्छेद पृ ३३५ पर इस प्रकार कहा गया है –

"नचेव अज्ञानहेतुत्वे बन्धस्य मिथ्यादर्शनादि हेतुत्वं कथ सूत्रकारोदितं न विरूद्धत दूति चेत्, मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगानाम कषायैकार्थ-सम्वाय्यज्ञानाविनाभाविनामेवेष्टानिष्टफलदानसमर्थकर्मबन्धहेतुत्व- समर्थनात-मिथ्यादर्शनादीनामपि संग्रहात् सक्षेपत इति बुद्धयामहे । ततो मोहिन एवाज्ञाद्विशिष्ट-कर्मबन्धो न वीतमोहादिति सूक्तम् ।"

पाठक देखे –जहाँ अज्ञान को बन्ध का कारण कहा, वहाँ उस अज्ञान मे मोह को ही कारण माना और मोह वह है जो मोहित करे, भुलाए, अज्ञानी बनाए । ऐसा मोह मुख्यत दर्शनमोह (मिथ्यात्व) ही है । चारित्रमोह तो श्रद्धान मे बाधक न होकर मात्र चारित्र घातक है, और श्रद्धान व चारित्र मे महद अन्तर है । यह पाठक सोचें कि दर्शन और चारित्र मे कौन किसका साधक है ? कौन पहिले और कौन पीछे है ? क्या यह ठीक है कि दर्शनमोह के बाद के क्रम मे आने वाला चारित्रमोह (अनन्तानुबन्धी) दर्शनमोह का कारण है । आश्चर्य ।

६ क्या कभी यह भी सोचा कि यदि मिथ्यादर्शन बन्ध मे कारण न होगा तो उसका विरोधीभाव -सम्यग्दर्शन भी मोक्ष मे कारण न होगा । और ऐसे मे (ज्ञानचारित्रेमोक्षमार्ग) सूत्र रचना पड़ेगा । सम्यक शब्द तो दर्शन का विशेषण है, वह भी न हो सकेगा और तब सारा का सारा दिगम्बर सिद्धान्त ही लुप्त हो जायेगा । भला यह भी कैसे सम्भव है कि हम सम्यकचारित्र मे तो सम्यग्यदर्शन को अनिवार्य कारण माने और मिथ्याचारित्र मे मिथ्यादर्शन को कारण न माने । अनन्तानुबन्धी (जो स्वय चारित्रमोहनीय की प्रकृति ही है) को प्रकारान्तर से (मिथ्यात्वी उत्पादक मान लेने के कारण) मिथ्याचारित्र के उत्पादन का मूलक कहें ?

हम नही चाहते कि पूर्वाचार्य की 'तत्र भावबन्धः क्रोधाद्यात्मकः, तस्यहेतुमिथ्यादर्शनम्' घोषणा को अपने तर्कों की कसौटी पर झूठलाया जाये और सबके प्रति जनता मे भ्रम पैदा होने जैसा कोई कदम उठाया जाये। "मिथ्यात्व को कर्मबन्ध मे अकिचित्कर कहना एक प्रकार से मिथ्यात्व का ही प्रचार करना है।"

५३. श्री प्यारेलालजी बड़जात्या :-

मिथ्यात्व भी चारित्र का घात करनेवाली कषाय है, अतः मिथ्यात्व बन्ध का कारण है वह अकिचित्कर नही। प्रवचनसार गाथा १३ और उसकी टीका को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत कर कहा है कि शुद्धात्मलाभ के लुटेरे मोह के स्वभाव और उसकी भूमिका का दिग्दर्शन नही करते।

५४ आचार्य श्री वीरसागरजी के शिष्य मुनि श्री श्रुतसागरजी :-

वे लिखते है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे नियम से जिन १६ प्रकृतियो का बन्ध होता है उनके बन्ध मे मिथ्यात्व निमित्त है, वह अकिचित्कर नही, क्योंकि मिथ्यात्व न हो तो उन १६ प्रकृतियो का बन्ध नहीं होगा। साथ ही उसकी (मिथ्यात्वकी) सामर्थ्य की प्रधानता अनन्तानुबधी चार को लाने की है। अनन्तानुबधी के उदय मे वह सामर्थ्य नही कि मिथ्यात्व को ला सके। इस अपेक्षा से अनन्तानुबधी को कथचित् अकिचित्कर कह सकते है, मिथ्यात्व को नहीं।

५५ चूलिका

अकि पु पृ ३, "मिथ्यात्व कैसे आता है ? इसी मे गोम्मटसार गाथा ३, "मोहजोगभवा" यह कहा गया है, अतः गुणस्थानो को मोह और योगजन्य कहा जाता है।" तथा यह भी कहा है कि "प्रथम चार गुणस्थानो मे दर्शन मोह की मुख्यता है– आदि।"

अकिचित्कर पु पृ ४ पर "आस्त्रवबन्ध की व्यवस्था सभी पूर्वाचार्यों ने कषाय और योग के द्वारा ही मानी है।"

समाधान –(१) जबकि अकि पु के पृ ३ पर स्वय गुणस्थानों को मोह और योगजन्य स्वीकार कर लिया है। परन्तु पृष्ठ पलटते ही स्वय भी पलट गये मोह शब्द का अर्थ पलटकर मात्र कषाय कर दिया जबकि जीवकाण्ड मे "मोहयोगभवा" कहिए– दर्शन–चारित्र–मोह वा मन, वचन, काययोग किया है। यदि मोह का अर्थ कषाय ही इष्ट होता तो यह कैसे कहा गया कि "प्रथम चार गुणस्थानों मे दर्शनमोह की मुख्यता

है ?" इस कथन से मालूम होता है कि आचार्य नेमीचन्द जी को मोह शब्द से दोनों मोहनीय लेना इष्ट रहा है।

तथा अपनीमान्यताकी पुष्टि मे सभी आचार्यों को समेट लेना तो योग्य नहीं है। आचार्यों ने तो नय विवक्षाओं कोलगाकर कषाय और योग को बध मे कारण कहा है। जिसे प्रसगो पर खोल दिया गया है।

(२) आचार्यों ने लिखा है कि १६ प्रकृतियों के बध का कारण मिथ्यात्व है।

२५ प्रकृतियों के बध का कारण अनन्तानुबधी है।

१० प्रकृतियों के बध का कारण अप्रत्याख्यानावरण है।

४ प्रकृतियों के बध का कारण प्रत्याख्यानावरण है।

६ प्रकृतियो के बध का कारण प्रमाद है।

५८ प्रकृतियो के बध का कारण सज्वलन है।

१ प्रकृतियो के बध का कारण योग है।

१६+२५+१०+४+६+५८+१ = १२० बध योग्य प्रकृतियाँ है जब सबके कारण मुख्य रूप से पृथक–पृथक है, तब ये गुजाइश ही कहाँ है कि किसी का कारण कोई अन्य को बतलाया जाये। तथा सामान्य रूप से जिन गुणस्थानो के जो-जो प्रत्यय है वे सभी कारण है।

(३) जब अकिचित्कर पुस्तक स्वरूपाचरणचारित्र को चौथेगुणस्थान मे मानती ही नही तब ऐसी स्थिति मे वह अनन्तानुबधी कषाय किस चारित्र को घातेगी ? क्योकि अनन्तानुबन्धी का उदय तीसरे गुणस्थान से लेकर ऊपर के सभी गुणस्थानों मे तो है ही नहीं तो अन्य किसी भी चारित्र की घातक अनन्तानुबधी है यह तो शायद अकिचित्कर पुस्तक भी नहीं स्वीकारती होगी। हमारा तो कोई आग्रह नहीं, आप चाहे स्वरूपाचरणचारित्र कहो या सम्यक्त्वाचरण चारित्र। रत्नकरण्ड श्रावकाचार निर्जरासार आदि ग्रन्थों में स्वरूपाचरणचारित्र कई बार कहा है–दोनो एकार्थवाची है। हम तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी के अनुदय मे चौथे गुणस्थान मे जो होता है उसे ही स्वरूपाचरणचारित्र या सम्यक्त्वाचरण चारित्र मानते हैं।

(१) अकि पु पृ ७, "इसे ईर्यापथिकास्त्रव कहा जाता है" ध पु १३ मे, ईर्या=किंचित, पथिक=योग, आस्त्रव=आस्त्रव, योग के निमित्त से जो किंचित आस्त्रव होता है उसे ईर्यापथिकास्त्रव कहते हैं।

(२) "सातावेदनीय का बन्ध क्या बिना स्थिति अनुभाग के होता है, योग के द्वारा जिस कर्म में प्रकृति पड़ी तो उसमें अनुभाग भी होगा– स्थिति बन्ध भी अवश्यम्भावी है।"

पृ. ८ पर लिखा है, "इन गुणस्थानों की सारी व्यवस्था योग पर निर्भर होती है।"

समाधान .–इन गुणस्थानों में अन्य प्रत्ययो का अभाव होने का कोई उपाय ही नहीं रहा, अन्यथा तो अकिचित्कर पुस्तक वहाँ पर भी स्थिति अनुभाग का कारण कषाय को ही कहती।

इससे ये सिद्ध हुआ कि इन गुणस्थानों मे स्थिति-अनुभाग का हेतु योग ही माना है, जबकि अकिचित्कर पुस्तक स्वय योगसे प्रकृति-प्रदेश बध की अभी तक घोषणा करती आयी है फिर भी जैसे यहाँ इन गुणस्थानों मे चारों प्रकार का बध योग से मान लिया है, वैसे ही मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी स्थिति-अनुभाग बध का हेतु मिथ्यात्व को मानने मे अकिचित्कर पुस्तक को क्यों आपत्ति आ रही है ? यह तो वही जाने। मूलाचार उतरार्ध गा ६६८ एव पचास्तिकाय गा १४८ की जयसेनाचार्य कृत टीका मे स्पष्ट ही मोह अर्थात् दर्शनमोह (मिथ्यात्व) को भी स्थिति-अनुभाग का हेतु हम पहले कह ही आये है।

अकि पु पृ १३–१४ मे "मैं पूछना चाहूँगा कि, क्या दर्शनमोहनीय के उदय मे अर्थात् मिथ्यात्व केउदय मे प्रत्येक जीव को व प्रत्येक समय सत्तर कोटाकोटि सागर की स्थिति नियम से पडती है ? यदि हाँ, तो एकेन्द्रिय मे भी उत्कृष्ट स्थिति के बन्धका प्रसग होगा क्योकि वहाँ उसका उदय हमेशा ही रहता है। लेकिन ऐसा मानना इष्ट नही है।"

समाधान –मै भी पूछँना चाहूँगा कि, क्या चारित्रमोहनीय के उदय मे अर्थात् अनन्तानुबन्धी के उदय मे प्रत्येक जीव को व प्रत्येक समय चालीस कोटाकोटि सागर की स्थिति नियम से पडती है ? यदि हाँ, तो एकेन्द्रिय मे भी उत्कृष्ट स्थिति के बन्ध का प्रसग प्राप्त होगा क्याकि वहाँ उसका उदय हमेशा ही रहता है। लेकिन ऐसा मानना इष्ट नही है। अकिचित्कर पुस्तक ने तो एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक के उत्कृष्ट स्थिति बन्ध का निषेध किया। लेकिन मैं पूछता हूँ कि, सज्ञी पचेन्द्रिय जीव जिस समय उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करता है, क्या दूसरे समय मे भी उतना ही उत्कृष्ट स्थिति का बध कर सकता है ? यदि नहीं, तो फिर मिथ्यात्व के सबध मे की गयी शका कैसे योग्य होगी ?

अकि पु पृ २३."प्रायोग्यलब्धि केप्रथम समय से लेकर क्रम-क्रम से चौंतीस प्रकृतियो का बन्धापसरण करता है।"

समाधान –चौंतीस बधापसरण मे ४१ प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति करता है, न कि चौंतीस प्रकृतियो का बधापसरण करता है।

अकि पु पृ २६, " कि विसयोजना मे विसयोजित किया गया द्रव्य अपना अध्वान, बधोदय की सीमा व काल प्राप्त होते ही पुनः सयोजित हो जाता है। जबकि क्षय होने पर यह सभव नहीं है।"

समाधान –(१) यदि कोई क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि विसयोजना के बाद क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले तब फिर ये परिभाषा कैसे घटित होगी ?

(२) विसयोजना और क्षय मे जो अन्तर आगम में बतलाया गया है उसे ही हम भी मानते । लेकिन क्षायिक सम्यग्दृष्टि के तो अनन्तानुबंधी की विसयोजना ही होती है, और वहाँ तो उसे ही क्षय माना है । क्योंकि चारित्रमोह के सिर्फ एक प्रकृति सूक्ष्म लोभ ही स्वमुख से नष्ट होती है, बाकी तो अनन्तानुबंधी विसयोजित होने पर नष्ट मानी गई है, शेष प्रकृतियाँ स्वजाति अन्य प्रकृतियों में सक्रमित होकर ही नष्ट होती है ।

अकिं पु पृ २७, "अर्थात् अतत्व श्रद्धान या सासादन परिणाम के कारण विसयोजित अनतानुबन्धी ही सयोजित होकर उदयगत हो जाती है ।"

समाधान – (१) सासादन परिणाम के कारण अनन्तानुबधी सयोजित होकर उदयगत हो जाती है, ये तो दूसरे गुणस्थान के लिए नियम हुआ ।

(२) अकिंचित्कर पुस्तक ने लिखा है कि मिथ्यात्व का काम अतत्वश्रद्धान कराना है, और अतत्व श्रद्धान से अनन्तानुबधी सयोजित होती है, षटखण्डागम के अनुसार ये बात स्वयमेव सिद्ध हो गयी कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे मिथ्यात्व के कारण ही अनन्तानुबधी का बध होता है ।

(३) अब रही उदय की बात तो आचार्यों के इस कथन को झूठलाया तो नहीं जा कि विसयोजित अनन्तानुबधी वाला जीव यदि सीधा मिथ्यात्व मे आता है तो आवलिकाल तक उसका एक परमाणु भी जब उदयावलि मे नहीं है तो उदय कहाँ से होगा ? अर्थात् उदय नहीं होता । दूसरे गुणस्थान मे प्रथम समय से बध-उदय माना है तो कषायपाहुड के अनुसार यह कथन लागू पड़ जाता है । इसी २७ पृ पर जो ६७ न टिप्पण है वह तो सासादन गुणस्थान के लिए दी है, उसे प्रथम गुणस्थान मे भी लगा लेना उचित नहीं है ।

अकिं पु पृ ३०, "सयोजना होने पर अनन्तानुबधी सत्ता और उदय मे तो रहती है लेकिन उदयावलि मे क्यों नहीं है ?"

समाधान –(१) उदयावलि के बिना उदय किसका ? ऐसा आगम मे तो नहीं कहा । ये तो अकिंचित्कर पुस्तक की ही आगम के प्रतिकूल आग्रह पूर्ण ध्वनि है ।

(२) "यहा पर सक्रमण की होने वाली प्रक्रिया मात्र सत्तागत द्रव्य मे ही होती है न कि उदयावलि या उदय समय मे । अतः उदयावलि के द्रव्य को एक आवलि काल तक उदय में रहने वाली अप्रत्याख्यानावरणादिक कषायों रूप स्तिबुक सक्रमण के द्वारा उदय से एक समय पूर्व ही क्रमशः परिणत कराता हुआ उदयावलि को खाली कर लेता है ।"

समाधान –(१) एक ओर सक्रमण की प्रक्रिया मात्र सत्तागत द्रव्य मे ही होती कहना दूसरी ओर उदयावलि के द्रव्य को एक आवलि काल तक उदय में रहने वाली अप्रत्याख्यानावरणादिक कषाय रूप से परिणत कर देना ये दोनों कथन तो परस्पर विरूद्ध हैं ।

(२) जब सक्रमित हुआ अनन्तानुबधी का द्रव्य एक आवलि काल तक उदयावलि मे ही नहीं है तब फिर "उदयावलि के द्रव्य को उदय मे रहने वाली अप्रत्याख्यानावरणादिक कषायों रूप" किसे परिणमाओगे ?

(३) उदय से एक समय पूर्व ही क्रमशः परिणत कराता हुआ उदयावलि को खाली कर देता है, यह कथन तो नवमे गुणस्थान मे जब अतिम आवलि शेष रहती है वहाँ लागू होता है यहाँ नहीं।

१ अकि पु पृ ३०, पर लिखा है कि "विसयोजना यानि सक्रमण हो गया" और पृ ३४ मे लिखा है कि "विसयोजना और सक्रमण एक नही है।" ये कथन तो स्ववचन बाधित हुआ।

२ क्षायिक की प्रक्रिया मे ये बात कहना योग्य है, लेकिन अकिंचित्कर पुस्तक पृ ३० पर स्वय विसयोजना को सक्रमण रूप स्वीकारा है वहाँ ये पृ ३४ का नियम कैसे घटाओगे ?

३ अध्वान, बन्ध, उदय सबधी समाधान पृ २६ के उत्तर मे कर आये है वहाँ से देखियेगा।

अकि पु पृ ३५ पर सक्रमण और विसयोजन के सबध मे दिया गया दृष्टात सबधीखुलासा-ये सभी मस्मे पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं उसी प्रकार सक्रमण एव विसयोजन भी पुद्गल द्रव्य की पर्याये हैं। और दो पुद्गल द्रव्यों की वर्तमान पर्यायो के बीच अन्योन्याभाव होता है यह बात अकि पु भूल गयी है ऐसा मालूम पडता है।

अकिं पु पृ ३६, "लेकिन किन्हीं ग्रन्थों मे विसयोजना को 'उपशम' शब्द द्वारा भी इगित किया गया है, वहाँ उपशम मे विसयोजना ही ग्रहण करना चाहिए।"

समाधान –(१) तब कहीं विसयोजना को स्वजाति अन्य प्रकृतियो रूप होने से सक्रमण भी कहा गया है तथा अनन्तानुबन्धी का चारों प्रकार (प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग) का अभाव हो जाने की अपेक्षा क्षय भी कहा है, समझता हूँ इसमे अकि पुस्तक को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(२) "एक मिथ्यात्व जीव को सिर्फ सम्यक्त्व होने के लिए बाधक हैं अर्थात श्रद्धान नही होने देता है।" एक तरफ अकिंचित्कर पुस्तक ही लिख आयी है कि मिथ्यात्व अधिकरण कारक होने से कोई कार्य नहीं करता, कर्ता और करण कारक ही कार्य करता है।"तो फिर मिथ्यात्व ने तत्व श्रद्धान न होने रूप कार्य को कैसे किया ?" और जब अतत्व श्रद्धान रूप कार्य हुआ तो सुतराम सिद्ध हो गया कि मिथ्यात्व कर्ताकारक भी है।

अकि पु पृ ३७, "साथ ही अनन्तानुबधी की विसयोजना के बिना दर्शनमोहनीय की क्षपणा, तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी प्राप्त नहीं होता।"

समाधान —(१) यह नियम दर्शनमोहनीय की क्षपणा मे तो लागू होता है, परतु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व मे एकांत से लागू नहीं होता। गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा ६५७, ६५८, ६५६ मे उपशमश्रेणि के आठवे से ग्यारहवे गुणस्थान मे सत्व के तीन स्थान बतलाये हैं—२८, २४, २१ प्रकृति के सत्व स्थान वाले। इससे ये जाना जाता है कि २८ प्रकृति की सत्ता वाले के बिना विसयोजना के भी द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि के २१ प्रकृतिक सत्व स्थान होता है और अनन्तानुबधी कि विसयोजना वाले के २४ प्रकृतिक सत्व स्थान लेता है।

(२) और यदि दो मत है तो उनके मत में दो स्थान ही होंगे २४, २१ प्रकृतिक सत्व वाले, तो फिर दोनो ही मतों से कथन देना चाहिए एक पक्षी नियम नहीं बनाना चाहिए।

अकिं पु पृ ४०, ४१ "सासादन गुणस्थान मे मिथ्यादर्शन का उदय नहीं है तो वहाँ ज्ञान को मिथ्याज्ञान की सज्ञा दिलाने वाली अनन्तानुबधी कषाय का उदय ही है!"

समाधान —(१) कोई जीव चौथे पॉचवे, छट्ठे गुणस्थान से सीधे तीसरे गुणस्थान मे आया वहॉ उसके ज्ञान को अज्ञान (मिथ्याज्ञान) सज्ञा किसने दी ? वहॉ तो अनन्तानुबधी का उदय नही है, फिर भी तीसरे गुणस्थान मे होने वाले ज्ञान को मिथ्याज्ञान तो आगम मे कहा ही गया है। यदि कोई कहेगा कि सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृति का उदय ही मिथ्याज्ञान सज्ञा देता है तो मिथ्यात्व प्रकृति से अनतगुणा हीन अनुभाग वाली सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति जब मिथ्याज्ञान सज्ञा दिला सकती है, तब फिर उससे अनतगुणा अधिक अनुभाग वाली मिथ्यात्व प्रकृति का उदय मिथ्याज्ञान सज्ञा क्यों नहीं दिला सकेगा ? अर्थात् मिथ्यात्वकी उत्तरप्रकृति मिथ्याज्ञान सज्ञा दिलाने मे समर्थ है, तो मूल प्रकृति मिथ्यात्व भी उस ज्ञान को मिथ्याज्ञान सज्ञा दिलाता ही है, इसमे शका की गुजाइश ही नहीं है।

(२) ये तो सासादन गुणस्थान मे लाना है इस अपेक्षा बात की है लेकिन मात्र अनन्तानुबधी ही सम्यक्त्व की घातक नहीं है, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व का उदय भी सम्यक्त्व का घातक है।

अकिं पु पृ ४४, "हम पूछना चाहेगे कि यदि परोदयबन्धी का यही तात्पर्य लिया जाये तो क्या कभी ऐसी भी स्थिति होगी कि सभी कषायों का अनुदय हो और मिथ्यात्व का या अन्य तत्सबधी प्रकृति का उदय, कषायों के बन्ध करानें मे निमित्त बने। लेकिन बन्धुओ ! ऐसी स्थिति होती नही है।"

समाधान —ऐसा तो कोई भी नहीं मानता जब आगम मे ऐसी असभव बात है ही नहीं तो उसे कौन मानेगा ? कोई भी नहीं। और जब ऐसी स्थिति होती नही है तो फिर जानबूझकर ये कुतर्क अकिंचित्कर पुस्तक ने क्यों उठाया ?

हम पूँछना चाहेगे कि "कषाय मिथ्यात्व की जननी है" तो अनन्तानुबधी दूसरे गुणस्थान मे मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियों का बध क्यों नहीं कराती ? तथा अनुदय को ईषत् उदय अकिंचित्कर पुस्तक कहती है ऐसी स्थिति मे तीसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत उपशमसम्यग्दृष्टि २८ प्रकृतिक सत्ता वाले के अनन्तानुबधी का अनुदय (ईषतुदय) और यथायोग्य अन्य कषायो के उदय में क्या ऐसी क्षमता है कि मिथ्यात्व का बध कर सके ? अकिं पुस्तक के अनुसार ईषत् उदय तो उसे ११वे तक भी बन जायेगा तो इन गुणस्थानो मे मिथ्यात्व का बध क्यो नहीं कराती है ? यदि कषाय ही कर्म बाधने मे प्रमुख कारण है, तो तीर्थंकर और आहारकद्विक को दूसरे गुणस्थान मे क्यों नही बाँधती ? ये तो बध योग्य प्रकृतियाँ है, और अनन्तानुबधी का उदय सासादन में हमेशा रहता ही है तो उसे इन प्रकृतियों को बाधना चाहिये था।

अकि पु पृ ५३. "सूक्ष्मलोभ के द्वारा दसवे गुणस्थान मे भी १६ प्रकृतियों का बन्ध हुआ करता है।"

समाधान —उसी प्रकार आगम मे ये भी कहा है कि, मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी अनिवृत्तिकरण मे भी सूक्ष्म मिथ्यात्व के द्वारा भी बध होता है।

अकि पु पृ ५४ "फिर भी तृतीय और चतुर्थ गुणस्थान मे क्षायोपशमिक भाव होने से बन्ध नहीं रुकता।"

समाधान —(१) बध तो क्षायिकभाव वालो के भी नहीं रुकता इस कारण कहीं क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव से बध होता है ये नहीं कहा जा सकता, धवल पुस्तक १ में क्षायोपशमिक भाव को स्वभाव का अंश होने से मगल कहा गया है।

(२) "३-४ गुणस्थान मे अनन्तानुबधी कषाय का अनुदय होने से उस सबधी प्रकृतियो का बध नही होता। दूसरा, औदियिकभाव बन्ध का कारण है।"

समाधान —अकि पु पृ २८ मे अनुदय को ईषत उदय स्वीकार किया ही है तब तो अनन्तानुबधी को वहाँ भी बध कराना चाहिये था ? दूसरे औदयिक भावों की क्या आवश्यकता है ?

(३) "बन्ध के लिए इनका (मिथ्यात्वादि भावों का) होना अपेक्षित भले ही है लेकिन इनमे श्लेष–चिकनाहट के अभाव मे प्रकृति-प्रदेश या स्थिति-अनुभाग रूप किसी भी प्रकार का बन्ध नही होता। किसी की उपस्थिति मे बन्ध होना और किसी के द्वारा बन्ध होना, इन दोनो मे स्पष्ट अन्तर है।"

समाधान —"मिथ्यात्वादि भावो का" ऐसा अकिंचित्कर पुस्तक मे लिखा है—इससे हम ऐसा भी कह सकते है कि, जैसे मिथ्यात्व भाव मात्र अपेक्षित है वैसे ही आदि शब्द से अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये भी मात्र अपेक्षित ही हुए। ऐसी स्थिति मे तो कोई भी बध का कारण नहीं ठहरा, तो फिर ससार कैसे सिद्ध होगा ? अर्थात् नहीं होगा। और जब ससार ही नहीं है तो ससार के अभाव पूर्वक होने वाला मोक्ष भी सिद्ध

नहीं होगा ? ऐसी स्थिति मे सर्व-शून्यता का प्रसग प्राप्त हो जायेगा जो कि सर्व ओर से विरुद्ध है।

(४) ये बात ही हम कई बार प्रमाण सहित स्पष्ट कर आये हैं, जब "मिथ्यात्व स्वोदयेण" आगम कह रहा है, और इसमे तृतीया (करणकारक) स्पष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि मिथ्यात्व भी करणकारक है, और "मिथ्यात्वणिमितः" ये कर्ताकारक भी है, तथा कर्ता और करण कारक कार्य करता है, इसलिये मिथ्यात्व बध करता है यह सुतराम सिद्ध हो गया। तथा मूलाचार उत्तरार्ध गा ६६८, पचास्तिकाय गा. १४८ मे स्पष्टतः मिथ्यात्व को स्थिति-अनुभाग बध का हेतु कह रही है और बध बिना-चिकनाहट के होगा क्या ? नहीं, चिकनाहट होने से ही होता है। तत्वार्थसूत्र अ ५, सू. ३६-३७। द्वियाधिकादिगुणाना तु। बन्धेऽधिकौपरिणामिकौ च। जिसमे दो शक्त्यश अधिक हो ऐसे पुद्गल परमाणु आदि का ही दो गुण हीन वाले पुद्गल परमाणु आदि के साथ बन्ध होता है। स्निग्ध गुणवाले का स्निग्ध गुणवाले के साथ, रूक्ष गुणवाले का रूक्ष गुणवाले के साथ बध होता है यह नियम है। इस कथन से चिकनाहट के अभाव से बध का निषेध नहीं हुआ।

अकि पु पृ ५७ "गति, जाति आदि के भी उदय से होने वाले औदयिक भावो को भी बन्ध का कारण मानने का प्रसग आ जाएगा।"

समाधान –(१) यही सिद्धात अकिचित्कर पुस्तक मिथ्यात्व पर लागू कर रही है ये उचित नही। क्योकि जिन औदयिक भावों का आगम बध का कारण नही कहता उसे कोई भी बध का कारण नही मानते और जिन औदयिक भावो को बध का कारण आगम मानता है, उसे सभी बध का कारण मानते है, और मिथ्यात्वको सर्वागम एक मत से बध मे कारण मानता ही है, और सभी मानते भी है। जब हम यह कहे कि सभी औदयिक भाव बध के कारण है तब तो इस बात को विस्तार देना अकिचित्कर पुस्तक को योग्य भी था, लेकिन हमने तो येकहा ही नहीं। उन्होने तो मिथ्यात्व भी औदयिक भाव है और वह भी बध का कारण नहीं है, ये सिद्ध करने के अभिप्राय से ये चर्चा लम्बाई है, परतु उनकी यह मानना सर्वागम विरूद्ध है। तत्वार्थवृति पृ ४६६ पर भी यह बात आयी है कि (मिथ्यादर्शन आदि बध के हेतु हैं और बन्ध सहित आत्मा हेतुमान है)। मिथ्यादर्शन आदि के द्वारा सूक्ष्म अनतानत पुद्गल परमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों के साथ जल और दूध की तरह मिल जाना बध है। केवल सयोग या सम्बन्ध का नाम बन्ध नहीं है।

(२) "जिन जिन मिथ्यात्वादि के उदय से अज्ञानी जीव ज्ञानावरणादि अष्ट द्रव्य कर्मों का बन्ध करता है उसे द्रव्य प्रत्यय कहा गया है।"

समाधान –इस कथन से स्पष्ट करणकारक सिद्ध हो जाने से अकिचित्कर पुस्तक पृ ५४-५८ का ये कथन कि "किसी के द्वारा बन्ध होना अलग बात है।" यह अपने आप खडित हो गया।

(३) "बल्कि उसके (द्रव्य प्रत्ययके) उदय मे मुख्यतया भावप्रत्यय रूप जीव के रागद्वेष आदि विभाव परिणाम ही नवीन कर्म बन्ध मे कारण होते है।"

समाधान –१ जहाँ पर आचार्यों ने भावप्रत्ययो की बात की है वहाँ पर रागद्वेषमोह तीनो ही लिये है और यहाँ अपनी मान्यता की पुष्टि के लिये मोह शब्द को छोड़ दिया गया है। ये उचित नहीं है। तथा राग द्वेष से चारित्रमोह और मोह से दर्शनमोह स्पष्ट रूप से आता है। तथा प्रवचनसार गाथा, ६ पंचास्तिकाय १४८ मे ये अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है और उसमे भी जयसेनाचार्य ने किया है। तथा आदि शब्द मे तो सब आ ही जाते है लेकिन अकिंचित्कर पुस्तक अपने मुख से कहने मे सकोच करती है।

अकि पु पृ ५८ "इसे यदि संक्षेप मे कहा जाये तो अतरग मे भाव प्रत्यय के द्वारा बहिरग मे द्रव्य प्रत्ययों का निमित्त पाकर बन्ध रूप नैमित्तिक कार्य सपन्न होता है।"

समाधान –आगम तो यह कहता है कि पूर्व के द्रव्य प्रत्ययो के विपाक का निमित्त पाकर वर्तमान मे भाव प्रत्यय होते है, और वर्तमान के भावप्रत्ययों का निमित्त पाकर नये द्रव्य कर्मों का बन्ध होता है।

अकि पु पृ ५६ 'आत्मा के जिस चेतन परिणाम से कर्म बधता है उसे भावबन्ध जानना चाहिए।'

समाधान –१ उस चेतन परिणाम को अकिंचित्कर पुस्तक ने क्यों नहीं खोला?

२ वे चेतन परिणाम है राग द्वेष मोह। इस कथन मे मो करण... क स्पष्ट आ गया।

अकि पु पृ ६० १ टिप्पण २०५ मे तो कषाय को भी क्रियावती ... के मे शामिल नहीं किया गया उसमे ऐसा कोई शब्द ही नही है तथा कषाय भी परिणामात्मक होने से मात्रभाव रूप है, कारण कि–इसके उदय से भी मिथ्यादृष्टि जीव मे राग, द्वेष की अनुभूति होती है। तथा ४ से ६ वे गुणस्थान तक जो राग, द्वेष का वेदन होता है वह एक अपेक्षा से स्वीकार किया है। टिप्पण २०६ मे मात्र पाच प्रकार का मिथ्यात्व है, उसके नाम गिनाये है उसमे ये नहीं कहा कि मिथ्यात्व परिणामात्मक होने से मात्र भाव रूप है इत्यादि।

२ तेरहवेगुणस्थान मे केवली भगवान के सबसे अधिक योग का कपन होने से सबसे अधिक आस्त्रव बध होता है, लेकिन स्थिति-अनुभाग की जघन्यता के कारण अभावतुल्य है। और वहाँ कषाय है ही नही तो वहाँ योग पर प्रभाव कौन डालता है ? किसके प्रभाव से ऐसा होता है ?

३ "सप्तरगी इन्द्रधनुषी रचना के समान ही मिथ्यात्व भी जीव की भावात्मक दशा है।"

समाधान –इस प्रकार की भाषा तो चारों अनुयोगों मे कहीं नही है यह तो अकिंचित्कर पुस्तक की आगमविरूद्ध नई भाषा है।

अकिं पु पृ ६२, "उस (मिथ्यात्व) से किसी भी प्रकार की क्रियात्मकता नहीं आती।"

समाधान —१ जहाँ मिथ्यात्व का उदय है वहाँ योग भी है, इससे मिथ्यात्व के उदय से भावरूप परिणाम होता है और योग के निमित्त से क्रिया होती है, इसलिये दोनों बन गये। समयप्राभृत श्लोक ५१ मे —कहा है कि —

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्न न वस्तुतया ॥५१॥

जो परिणमित होता है सो कर्ता है (परिणमित होने वाले का) जो परिणाम है सो कर्म है और जो परिणति है सो क्रिया है, यह तीनो वस्तु रूप से भिन्न नहीं है।

कर्ता परिणामि दरव, कर्म रूप परिणाम।
क्रिया पर्याय की फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम ॥

पर्यायो के बदलने का नाम ही तो क्रिया है, और मिथ्यात्व भी पर्याय है इसलिये पर्यायो का बदलना तो होता ही है, यदि मिथ्यात्व बदलता न होता अर्थात् क्रियात्मकपना न होता तो मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यक्त्व की उत्पत्ति किसी भी जीव की न होती? परतु यह तो आगम को अमान्य है। यदि अकिचित्कर पुस्तक को मिथ्यात्व मे क्रियात्मक है यह मान्य नही है तो वह भी मिथ्यात्वी सिद्ध हुई। इसलिये मिथ्यात्व भी सक्रियात्मक होने से बन्ध का कर्ता सिद्ध हुआ।

३ यह मिथ्यात्व द्रव्य के ध्रुवाश रूप होता तो अक्रियमान भी लिया जाता, परतु मिथ्यात्व स्वय पर्याय है और पर्याय सक्रिय ही होती है, अक्रिय नहीं।

४ "मिथ्यात्व के उदय मे जीव कभी कषायवान नही होता।"

समाधान —१ जहाँ मिथ्यात्व गुणस्थान आधार होगा वहाँ हमेशा जीव कषायवान ही होता है, अर्थात् जहाँ मिथ्यात्व भाव हो उससे वहा अनन्तानुबधी का बध निश्चित होता है।

अकिं पु पृ ६३, "कारक का सामान्य अर्थ होता है जो क्रिया को करे वह कारक है।"

समाधान —जब कारक का अर्थ क्रिया को करे, किया है तो इससे स्वतः सिद्ध हो गया कि अधिकरण भी कारक है और क्रिया करता है। तब फिर अधिकरण कारक कुछ कार्य नहीं करता ये बात कहाँ रही ?

२ "करण कभी कर्त्ता के रूप मे उपस्थित नही होता।"

समाधान :—भाववाच्य में तो हमेशा ही कर्ता मे तृतीया विभक्ति (करण) होती है। नहीं तो भाववाच्य का प्रयोग ही नहीं होगा। फिर अकिचित्कर पुस्तक का ये सिद्धात कहाँ रहा ?

अर्कि पु पृ ६५, पर जो करण उपकरण और अधिकरण की कथनी की गयी है वह मात्र अक्रमिक ज्ञान का परिणाम दिखता ।"मिथ्यात्व मात्र अधिकरण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है ।"

समाधान —१ पचास्तिकाय की ६२ गाथा मे विकार के षट्कारक स्पष्ट कहे गये हैं, वहाँ विकार को मात्र अधिकरण कारक नहीं कहा गया है । इससे मालूम पड़ताहै कि, मिथ्यात्व रूप विकार को कर्त्ता, कर्म, करणादि छहो कारक रूप स्वीकार किये गये है । तथा "मिथ्यात्व के उदय मे" ये भाषा करणकारक का लोप करके अधिकरण कारक के रूप मे अपने गलत अभिप्राय की पुष्टि के लिए बनाई गई है ।

२ वस्तु स्वातत्र्य की अपेक्षा देखा जाये तो प्रत्येक पर्याय के षट्कारक स्वय के स्वय मे स्वतत्र है, उस पर्याय का कर्ता उसका द्रव्य, गुण और पूर्व पर्याय का व्ययभीनहीं, (प्रवचनसार गा १०२) । तब फिर मिथ्यात्व, अनन्तानुबधी के बन्ध रूपकार्य केकर्त्ता की बात ही नही बन सकती । लेकिन जब दो गुणों की वर्तमान पर्याय मे कारणकार्य घटित किये गये है वहॉ मिथ्यात्व कारण और अनन्तानुबधी कषाय कार्य होता है ।

३ "कर्त्ता विभिन्न कारणो की सहायता से कार्य को करता है ।" तो फिर वह कर्त्ता कैसे हुआ ? कर्त्ता की परिभाषा ही ये बतलाती है कि मुझे किसी भी कारणो की सहायता की जरूरत नही मै स्वतत्र रूप से अपने कार्य को करता हूँ ।"ध्यान रहे! अधिकरण कभी भी कर्त्ता या करण नही हुआ करता ।" 'शेषेषष्ठी' इस सूत्र के अनुसार अधिकरण कारक की प्रवृति सभी कारको मे हो जाती है । इसलिये मिथ्यात्व बध के प्रति किंचित्कर ही हुआ करता है अकिंचित्कर नहीं ।

अकि पु पृ ६६, "एक केनवास पर एक चित्रकार ने चित्र बनाया । चित्र बनाने मे वह विभिन्न रगो एव ब्रुश की सहायता लेता है, और चित्र को तैयार कर देता है । तो यदि यहाँ कोई यह कहे कि चित्र केनवास ने बनाया, यह उसकी अविज्ञता का ही सूचक हुआ ।"

समाधान —**अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणुप्पाओ ।**
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जते सहावेण ॥ ॥३७२॥ समयप्राभृत

टीका —और भी ऐसी शका नहीं करना चाहिए कि —पर द्रव्य जीव को रागादि उत्पन्न करते है, क्योकि सर्व द्रव्यो का स्वभाव से ही उत्पाद होता है । यह बात दृष्टातपूर्वक समझाई जा रही है

मिट्टी घटभावरूप से उत्पन्न होती हुई कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न होती है या मिट्टी के ? यदि कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न होती हो तो जिसमे घट को बनाने के अहकार से भरा हुआ पुरुष विद्यमान है और जिसका हाथ (घडा बनाने का) व्यापार करता है, ऐसे पुरुष के शरीराकार घट होना चाहिए । परन्तु ऐसा तो नही होता, क्योकि अन्यद्रव्य के स्वभाव से किसी द्रव्य के परिणाम का उत्पाद देखने में नहीं आता । यदि ऐसा है तो फिर मिट्टी कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न नहीं होती, परन्तु मिट्टी के स्वभाव

से ही उत्पन्न होती है, क्योंकि (द्रव्य के) अपने स्वभाव रूप से द्रव्य के परिणाम का उत्पाद देखा जाता है। ऐसा होने से, मिट्टी अपने स्वभाव को उल्लघन नहीं करती। इसलिये, कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं, मिट्टी ही, कुम्हार के स्वभाव को स्पर्श न करती हुई अपने स्वभाव से कुम्भभाव से उत्पन्न होती है।

जो परद्रव्य ही को चित्रादिक का उत्पन्न करने वाला मानते है, वे नय विभाग को नही समझते, वे मिथ्यादृष्टि हैं। ये चित्रादिक तो केनवास के सत्त्व मे उत्पन्न होते हैं, पर द्रव्य तो निमित्त मात्र है —ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है। इसलिये आचार्य देवकहतेहैं कि, हम चित्रादि की उत्पति मे अन्य द्रव्य पर क्यों कोप करे ? चित्रादि का उत्पन्न होना तो अपना ही (केनवास का ही) अपराध है। इसलिये मिथ्यात्व चित्रकार और अनन्तानुबधी चित्रपट सिद्ध हुई।

अकिं पु पृ ६८, "प्रकृति के पास परिणमन करने की क्षमता मात्र होने से ही कार्यों की उत्पति नहीं हो जाती। उसमे पुरुषगत रागादि परिणामों का निमित्त आवश्यक होता है।"

समाधान —प्रकृति के पास परिणमन करने की क्षमता ही कार्य के प्रति नियामक कारण होती है। पुरुषगत मोह रागद्वेषादि परिणाम तो उस कार्य के ज्ञापक कारण है। न्यायदीपिका की सस्कृत टीका मे कोठिया जी कहते है कि "**सामग्री जनिका हि कार्यस्य नैक कारणम्**।" तथा कार्य हमेशा पाँचों समवायों की समग्रता मे होता है। तथा समयसार ८०–८१ का ये अभिप्राय नहीं है जो अकिंचित्कर मे दिया गया है।

२ "ज्ञानावरणादि आठ कर्मों मे मोहनीय कर्म ही मूलभूत कर्म है, और इस मोहनीय मे भी कषाय ही सभी कर्मों की जननी है।"

समाधान — सब कर्मों मे मोहनीय मूलभूत कर्म है उसमे भी दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व) ही सभी कर्मों की जननी है। यही सभी आचार्यों ने कहा है।

अकिं पु. पृ ७०, "जैसे-जैसे कषाय मन्द होती है वैसे वैसे मिथ्यात्व की शक्ति भी क्षीण होती जाती है।"

समाधान —भगवती आराधना दूसरा शिक्षा अधिकार की १०–११ गा मे।

ज अण्णाणि कम्म, खवेदि भवसय-सहस्सकोडीहि।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥१०॥

अर्थ — सम्यग्ज्ञानरहित जो अज्ञानी सो जा कर्मकू लक्षभव कोटिभव पर्यंत तपश्चरणकरि क्षिपावै, ता कर्मकू सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्ति रूप हूवो अतर्मुहुर्त मे क्षिपावे है, नाशकरेहै।

छट्ठट्ठमदसमदुवादसेहि अण्णाणियस्स जा सोधो।
तत्तो बहुगुणदरिया, होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स ॥११॥

अर्थ —अज्ञानी के वेला, तेला या च्यार उपवास तथा पाच उपवास इत्यादि तपकरि जो शुद्धिता होय है, तातैं बहुतगुणी शुद्धिता भोजन करता भी सम्यग्ज्ञानी ताकै होय है। तथा नियमसार गा १४४।

जो चरदि संजदो खलु, सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो ।
तम्हा तस्स दु कम्मं, आवासय लक्खण णा हवे ।।१४४।।

अर्थ .—जो सयमी मुनि निश्चितरूप से शुभ भाव से चर्या करता है, वह अन्यवश होता है, इसलिये उसके आवश्यक लक्षण क्रिया नहीं होती है ।

टीका—जो निश्चित रूप से जिनेन्द्र भगवान के मुखकमल से विनिर्गत ऐसे परम आचारशास्त्र के क्रम से सदा सयत होते हुए शुभ उपयोग मे आचरणचर्या करते हैं वे व्यवहारिक धर्मध्यान से (ही) परिणत है इसी हेतु से उनके चरण और करण प्रधान हैं। वे स्वाध्यायकाल का अवलोकन का प्रत्याख्यान करते है । तीनो सध्याओं मे भगवान अर्हत परमेश्वर की लाखो स्तुतियो से जिनका मुखकमल मुखरित रहता है अर्थात् तीनो सध्याओं मे वे भगवान अर्हत की अनेकप्रकार से स्तुति, वदना करते है । और तीनो कालो मे नियम से पारायणहोते है, इस प्रकार से अहोरात्र में भी होने वाली ग्यारह क्रियाओंमे तत्पररहते है । पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमण के सुनने से उत्पन्न हुए सन्तोष से जिनका धर्मरूपी शरीर रोमाच सेरोमाचितहो जाता है। अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृनिपरिसख्यान, विविक्तशय्यासनऔर कायक्लेश इन नाम वाले छह प्रकार के बाह्यतपो मे सदैवउत्साहशील होते है । स्वाध्याय ध्यान तथा शुभाचरण से च्युत होनेपरउनमे पुनः स्थापन स्वरूप प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य और व्युत्सर्गइननामवालेछह आभ्यतर तपो के अनुष्ठान मे कुशल बुद्धि वाले हैं, किन्तु वे निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के लिये कारणभूत ऐसे अपनी आत्मा के आश्रित जो आवश्यक क्रिया है जो कि निश्चय से परमात्मतत्व मे विश्रातिरूप धर्मध्यान और शुक्लध्यान है उसको नही जानते है, अतः पर द्रव्य केआधीन होने से वे अन्यवश ऐसे कहे गये है । जिनका चित्त तपश्चरण मे निरत हैऐसे ये ही अन्यवश हुए तपोधन स्वर्गलोक आदि के क्लेश की परम्परा से शुभोपयोग के फलस्वरूप ऐसे प्रशस्तरागरूपी अगारो से सिकते है ।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे मद कषाय मे सोते हुए बिलाव की उपमा दी है । देखने से ऐसा लगता है कि यह सो रहा है लेकिन वह सो नही रहा वह तो शिकार की खोज मे सावधान बैठा है । यही स्थिति मद कषाय की भी है । हाँ कषाय की मदता वह पात्रता है तत्वनिर्णय करते है तब कषाय मद ही होती है । उस समय जीव आत्मानुभव का प्रयत्न करना चाहे तो कर सकता है ।

ओम शान्ति

उपसंहार

सर्व प्रथम हमने अपनी पुस्तक मे सुख का स्वरूप बतला कर इसके अनन्तर मिथ्यात्व का विविध अनुयोग द्वारो के द्वारा विचार कर बन्ध के कारणों का विचार करते हुए उसके कारण पाँच बतलाये है। उनके नाम हैं –मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद कषाय और योग। इनको समयसार और मूलाचार मे आस्त्रव कहा गया है। ऐसा भेद क्यो किया गया है ? उसका समाधान है कि चाहे बन्ध के कारण कहो या आस्त्रव के कारण इसमे कोई भेद नहीं है।

तत्वार्थसूत्र मे गुणस्थानों की अपेक्षा बन्ध के कारण कहे गये हैं। पहले ये पाँचो ही द्रव्यार्थिकनय से बन्ध के कारण है और पर्यायार्थिकनयो मे मुख्य रूप से ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा कषाय और योग बन्ध के कारण है। इसी बात को बतलाते हुए तत्वार्थसूत्र के आठवे अध्याय मे एक और दो नम्बर के सूत्र रचे गये हैं। इसी बात को दूसरे सूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि मे नयों की विवक्षा न कर खोल दिया गया है। यहॉ इतना विशेष जानना चाहिये कि यह जैनधर्म है जिसमे पर्याय सहित द्रव्य को ही कारण और कार्य मे परिगणित किया गया है, इसलिये चाहे द्रव्यार्थिकनय का कथन हो और चाहे पर्यायार्थिकनय का कथन हो, दोनों मे पर्याय सहित द्रव्य को या द्रव्य सहित पर्याय को ही कारण और कार्य मे परिगणित किया गया है। इसलिये ऋजुसूत्रनय के दो भेद करके स्थूल ऋजुसूत्रनय मे अनेक पर्यायो के सम्मुचयरूप अन्वय की अपेक्षा द्रव्यपना घटित हो जाता है। न केवल द्रव्य निर्पेक्ष पर्याय ही कारण है और न केवल पर्याय निर्पक्ष द्रव्य ही कारण है, क्योकि ये दोनो परस्पर की अपेक्षा किये बिना कारण बन ही नहीं सकते है। यद्यपि वेदनाप्रत्यय अनुयोगद्वार मे नय दृष्टि से कारण-कार्य का विचार किया गया है।

आगे अकिंचित्कर पुस्तक मे कर्त्ता और कर्म आदि का विचार करते हुए उस पुस्तक मे यह कहा गया है कि अधिकरण कारक कभी भी कर्ता और करण कारक नहीं हो सकता है। ऐसा लगता है कि प्रवचनसार की १६ वी गाथा की टीका मे स्वयमू शब्द के ऊपर अकिचित्कर पुस्तक की दृष्टि नही गई है, इसलिये ऐसा निर्देश किया है, अन्यथा ऐसा निर्देश अकिचित्कर पुस्तक मे देखने को नही मिलता, क्योकि जिस प्रकार सविकल्प निश्चयनय मे सम्बोधन सहित छहो कारक घटित किये गये है, उसी प्रकार असद्भूत व्यवहार नय मे भी छहों कारक बन जाते है।

कर्त्राद्या वस्तुनो भिन्ना येन निश्चयसिद्धये।
साध्यन्ते व्यवहारोऽसौ निश्चयस्तदभेददृक् ॥१०२॥ अन धर्मा. अ १

इसकी टीका मे '**कर्तृ-कर्म-करणादयः**' लिखा है। इससे मालूम पड़ता है कि अकिचित्कर पुस्तक की इस पर दृष्टि नही गई, अन्यथा उसमे ऐसा एकान्त कथन दृष्टिगोचर नही होता, क्योकि जो कथन सविकल्प निश्चयनय मे बन जाता है वह असद्भूत व्यवहारनय मे भी घटित किया जा सकता है। तथा नियमसार गाथा १८ मे

कर्म का कर्ता जीव को ही कहा गया है। तथा घट का कर्ता जीव को इसी नय से कहा गया है। नियमसार की गाथा इस प्रकार है

कत्ता भोत्ताआदा पोग्गल कम्मस्स होदि ववहारो।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो ॥१८॥

यदि कहा जाये कि जो कर्त्ता या करण होता है वह अधिकरण नहीं होता ? ऐसी शका भी ठीक नहीं, क्योंकि जिस प्रकार जो व्यवस्था सविकल्प निश्चयनय मे बन जाती है, वही व्यवस्था असद्भूत व्यवहार नय मे भी बन जाती है। इसके लिए अनगार धर्मामृत का उदाहरण पर्याप्त है। इसीलिये हमने उसकी टीका के उक्त वचन को भी उद्घृत कर दिया है। इसी बात को द्रव्यसग्रह मे "कर्ता-भोक्ता" अधिकार मे स्पष्ट किया गया है। वहाँ लिखा है –

पुग्गलकम्मादीण कत्ता व्यवहारो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण ॥८॥ द्र सं.

इसी बात को समयसार गाथा २४ जयसेनाचार्य टीका मे भी लिखा है –

ज कुणदि भावमादा सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो व्यवहारा पोग्गल कम्माण कत्तारं ॥२४॥

अकिंचित्कर पुस्तक मे अन्य जो अवान्तर विषय आये है उन पर नये शीर्षक बनाकर विचार किया गया है।

बन्ध का विचार सब स्थानो पर दो दृष्टियो से किया जाता है एक द्रव्यार्थिकनय से और दूसरे पर्यायार्थिकनय से। इसीलिये तत्वार्थसूत्र के आठवे अध्याय मे प्रथम दो सूत्रो की रचना हुई है। किन्तु अकिंचित्कर पुस्तक के अनुसार पहला सूत्र द्रव्यप्रत्ययों का कथन करनेवाला सूत्र है, और दूसरा भाव प्रत्ययों का कथन करने वाला सूत्र है। यहाँ द्रव्यप्रत्यय का अर्थ द्रव्यार्थिकनय से कथन करने वाला सूत्र किया जाता है, और भावप्रत्यय का अर्थ पर्यायरूप करके पर्यायार्थिकनय से कथन करने वाला सूत्र किया जाता है तो कोई आपत्ति नही। परन्तु द्रव्यप्रत्यय का अर्थ पुद्गल बन्ध के कारण पाँच है और भावप्रत्यय का अर्थ कर्म उदय से होने वाला भावरूप लिया जाता है तो आपत्ति है, क्योंकि पाचो ही कारण पुद्गलबन्ध के निमित्त ठहरेगे तो मिथ्यात्व रूप जो भाव होता है वह कारण नहीं बन सकेगा। ऐसी स्थिति मे तो एकेन्द्रियादि सभी जीव सम्यग्दृष्टि हो जायेगे जो कि आगम मान्य नही है। इसीलिये हमने जो द्रव्य प्रत्यय और भाव प्रत्यय का अर्थ आचार्यों के अभिप्राय अनुसार किया है वह ही ठीक है। इससे मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मे भेद बन जाता है और कषाय के बिना मिथ्यात्व ही ससार का कारण विशेष रूप से बन जाता है। रत्नकरण्डश्रावकाचार मे कहा भी है –

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम् ॥२४॥

इस प्रकार अकिंचित्कर पुस्तक के उत्तर स्वरूप यह कथन सम्पूर्ण हुआ।

"सन्दर्भ ग्रन्थ सूची"

क्र. स.	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
१	अष्टपाहुड	मुनि श्री अनतकीर्ति ग्रन्थमाला समिति
२.	समयसार	श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, स्टे अगास पो बोरिया वाया आणद (गुजरात)
३	प्रवचनसार	
४	नियमसार	वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला
५	छहढाला	मोहनलाल शास्त्री जवाहरगज जबलपुर
६	सर्वार्थसिद्धि	
७	धवला पुस्तक १२	अमरावती बरार
८	गोम्मटसार कर्मकाण्ड	श्रीमद राजचन्द्र आश्रम, अगास
६	धवल पुस्तक ७	फलटण गल्ली सोलापुर
१०	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	श्री मध्य क्षेत्रीय मुमुक्षु, मण्डल सघ सागर (म प्र)
११	मूलाचार	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन कनाट प्लेस नई दिल्ली
१२	तत्वार्थसूत्र	शिखरचन्द्र सुरेन्द्रकुमार जैन, मोहनलाल शास्त्री जवाहरगज जवलपुर
१३	पचास्तिकाय	आगास, वाया आणद (गुजरात)
१४	अनगारधर्मामृत	श्री गणेश वर्णी दि जैन (शोध) सस्थान नरिया वाराणसी
१५	विषापहारस्तोत्र	
१६	धवल पुस्तक ८	फलटण गल्ली, सोलापूर
१७	जयधवला पुस्तक ७	चौरासी, मथुरा
१८	प्राचीन पच सग्रह	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
१६.	जयधवला पुस्तक १०	
२०.	प्राकृत पच सग्रह (सस्कृत)	भारतीय ज्ञानपीठ
२१	धवला पुस्तक १	अमरावती, बरार
२२	धवला पुस्तक १०	अमरावती, बरार
२३	गोम्मटसार जीवकाण्ड	स्टेशन अगास, वाया आणद (गुजरात)

क्र स.	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
२४	आप्त परीक्षा	
२५	जय धवल पुस्तक १२	भा दि जैन सघ, चौरासी, मथुरा
२६	पचाध्यायी पूर्वार्ध	
२७	कषाय पाहुड सुत्त	वीर शासन सघ, कलकत्ता
२८	जय धवल पुस्तक ४	भा दि जैन सघ, चौरासी मथुरा
२९	मोक्षमार्ग प्रकाशक	दिल्ली सस्करण
३०	तत्वार्थ राज वार्तिक	पन्नालाल जैन, बनारस
३१	जयधवला पुस्तक ८	भा दि जैन चौरासी, मथुरा
३२	कषाय पाहुड सूत्र	फलटण सातारा
३३	जीवस्थान चूलिका (धवल पुस्तक ६)	होटगी रोड़ सोलापूर
३४	जय धवल पुस्तक १३	चौरासी मथुरा
३५	महाबध भाग १	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
३६	आप्तमीमासा	
३७	स्वामी कार्तिकेयानुर्पेक्षा	परमश्रुत प्रभावक मण्डल आगास
३८	धवल पुस्तक १५	
३९	कर्मस्तव	
४०	दशकरण	
४१	वृहद द्रव्य सग्रह	परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास
४२	जयधवल पुस्तक २	चौरासी मथुरा
४३	अष्टसहस्त्री	23, Kalbhat Lane, Bombay
४४	भगवती आराधना	हीरा बाग पो गिरगाव बम्बई
४५	परीक्षा मुख	मोहनलाल शास्त्री जवाहरगज जबलपुर